(देश देशान्तरों में प्रचारित, उच्च कोटि का आध्यात्मिक मासिक-पत्र)

०-२॥) सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई। एक अंक का ।)
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई ॥

सम्पादक—पं० श्रीराम शर्मा आचार्य, सहा० सम्पा०—प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए०

वर्ष ७ } मथुरा, १ जनवरी सन् १९४७ ई० { अंक १

सबसे पहले आध्यात्मवाद की शिक्षा प्राप्त कीजिए।

संसार में अनेक प्रकार के ज्ञान और विज्ञान मौजूद हैं। लोग अपनी अपनी रुचि के अनुसार उन सबको सीखते हैं और लाभ उठाते हैं। पर इन सब विज्ञानों से ऊचा एक महा विज्ञान है, जिसके बिना अन्य सब विज्ञान, अधूरे एवं अनुपयोगी हैं। खेद है कि उस महा विज्ञान के महानतम लाभ ...व की ओर हम ध्यान नहीं देते। अध्यात्मवाद जीवन का वह तत्वज्ञान है जिसके ऊपर ...ी और बाहरी उन्नति, समृद्धि एवं सुख शान्ति निर्भर है।

साहित्य, कला, शिल्प, रसायन, विज्ञान आदि का ज्ञान मनुष्य की पदवी और समृद्धि को ...। पर अध्यात्म ज्ञान के बिना सहयोग, प्रेम, आत्मीयता, सन्तोष, आनन्द एवं उल्लास की उपलब्धि नहीं होसकती। अनेकों धन कुबेर और उच्च पदासीन व्यक्ति अपने जीवन को नरक की ज्वाला जैसी अशान्ति की अग्नि में दिन रात जलता हुआ अनुभव करते हैं। इसके विपरीत अनेकों साधारण स्थिति के व्यक्ति अपने को स्वर्गीय सन्तोष की शान्ति से परितृप्त अनुभव करते हैं।

आध्यात्मवाद वह महा विज्ञान है जिसकी जानकारी के बिना भूतल के समस्त वैभव निरर्थक हैं और जिसके थोड़ा सा भी प्राप्त होने पर जीवन आनन्द से ओत प्रोत होजाता है। संसार में सीखने योग्य, जानने योग्य अनेकों वस्तुऐं हैं पर अखण्ड ज्योति के पाठको! स्मरण रखो सबसे पहले जिसे सीखने और हृदयंगम करने की आवश्यकता है वह—वैज्ञानिक आध्यात्म बाद ही है।

प्रेस फण्ड के लिए सहायताऐं।

इस मास प्रेस फण्ड के लिए निम्न लिखित सहायताऐं प्राप्त हुईं। अखंड ज्योति इन सज्जनों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करती है।

———

२१) श्री० बंशीधर महादेवलाल जी मोहनिया
१५) श्री० रामेश्वर बृजमोहन सराफ, वर्धा
११) श्री० बृद्धचरण मिश्र, बिलासपुर
११) श्री० काशीप्रसाद अग्रवाल आरंग
११) श्री० डूंगरमलजी भूत डूंडलोद
१०) श्री० हरीदत्तजी पाठक हलद्वानी
१०) श्री० सत्यनारायनजी मूधड़ा हैदराबाद
१०) श्रीमती चन्द्रकान्ता जेरथ, नई दहली
१०) श्रीमती प्रेमप्यारी देवी बैजल, कानपुर
८) श्री० तेजभानमलिक, मोंएट गोमरी
५) श्री० प्यारीलाल शर्मा, सीलचर
५) श्री० चंदिकाप्रसाद मातुंगा, बम्बई
५) श्री० विष्णुकरण जे० मेहता, बान्दा
५) श्री० ताराकृष्ण चतुर्वेदी, नई दहली
५) श्री० ओंकारदासजी वैष्णव सिरोही
५) श्री० अम्बाप्रसादजी भटनागर, धनौरा
५) श्री० जे. ऐस. ऋषिराज, रायपुर
५) श्री० रामचन्द्र माहेश्वरी, बरोरा
५) श्री० रामविहारी चपरासी, गोण्डा
५) श्री० घासीरामजी कनोडिया, डूंडलोद
३) श्री० अनन्तराम काबरा जैतू
३) पी० विश्वनाथ सिनोय, पिरदूर
३) श्री० बालगोविन्द सी पटेल अहमदाबाद
२॥) श्री० रामप्रसादजा गोटिया, मनकी
२॥) श्री० विनायक भगवत्त जोशी, सेन्धवा
२॥) श्री० कैलाशचन्द्र गोयल, गोला गोकरन
२॥) मुन्शी जानकीप्रसाद औरंगाबाद
२॥) श्री० प्रभूदयालजी पोद्दार, दांता
२॥) श्री० कन्हाईसिंह, कौसम
२॥) श्री० जगदीशप्रसाद सेवक रुड़की
२॥) श्री० जयलालशाह एडवोकेट नैनीताल
२॥) श्री० कृष्णमोहनप्रसादजी काठमंडू
२॥) श्री० महावीरप्रसादजी पोद्दार डूंडलोद
२॥) श्री० कन्हैयालालजी केडिया डूंडलोद
२॥) श्री० सदाशिवराव जोशी, भोपाली
२) श्रीमती पुष्पादेवी दुग्गड नागौर
२) श्री० बनवारीलाल गोयल, लखनऊ
२) श्री० महावीरप्रसाद निगम, रनजीत पुर
२) श्री० एम. एन. बांगरे, सेलू
२) श्री० राजाराम अवस्थी मोतीपुर
२) श्री० रामसेवक गुप्त भरथना
२) महात्मा गोपालदासजी बघोई
२) श्री० महादेवप्रसाद तिवारी, एधी
२) श्री० सियाराम नत्थूलाल गढवाल, जबलपुर
२) श्री० मनोहरदयाल वर्मा जबलपुर
२) गुरु पादप्पा गुरु लिंगप्पा कुमड़े, लातूर
२) पं० कन्हैयालालजी शर्मा डूंडलोद
२) प० बंशीधर शर्मा डूंडलोद
२) श्री० प्रभाशंकर जेठालाल रावल अहमदाब
१॥) श्री० वामनराव ताटके, दमोह
१॥) सरदारमल दुग्गड़, नागौर
१॥) पं० प्रभाकर राजाराम पटवारी, सेगांव
१॥) श्री० हरनारायण गोपीलाल, सिन्दी
१॥) श्री० ज्वालाप्रसाद शर्मा, सरमथुरा
१।-) श्री० रामविहारी टंडन, नैनीताल
१) श्री० सागरमल चौधरी, नागौर
१) डा० हीरालाल गुप्त बेगूसराय
१) श्री० केदारमल शंकरलाल सोमानी, मुलठान
१) श्री०गौरीलाल हनुमानप्रसाद पुरोहि...
१) पं० रामरतन शर्मा त्रिपाठी, का
१) श्री० मोहन चौधरी, भागलपु
१) श्री० रामस्वरूप कटियार, सरा
१) श्री० शिवचन्द्र कटरिया, रायपुर
१) श्री० सोहंप्रसाद रामपुर
१) श्री० धनाराम टेकसिंह, रायपुर
१) श्री० अशोकचन्द्र चतुर्वेदी फीरोजाबाद
१) श्री० सुधीरचन्द्र चतुर्वेदी फीरोजाबाद
१) मास्टर द्वारिकादास पटेल करली
१) पं० नाथूलाल शर्मा, जावद
१) श्री० अयोध्याप्रसाद राय महानगा
१) श्री० सत्यानन्द संयमी बरौठा
१) श्री हरीवल्लभ शर्मा लश्कर

थे वे ही आज निरर्थक व्यर्थ या हानिकारक प्रतीत होने लगते हैं। इससे प्रकट है कि मन के सन्तोष में ही सुख है। राजा अपने राजमहल में जितना सुखी है, साधु अपनी कुटी में उससे भी ज्यादा सुखी है। 'माल' की मस्ती दुनियां में बहुत बड़ी मानी गई है पर 'ख्याल' की मस्ती उससे भी बड़ी है। मन का प्रकाश जिस वस्तु पर भी पड़ता है वह चमकने और जगमगाने लगती है, वही लाभ दायक प्रतीत होने लगती है।

हम सुखी होना चाहते हैं, लाभ कमाना चाहते हैं। हमारा सुख स्थायी एवं मजबूत होना चाहिए। यह तभी हो सकता है कि जब हम मन के प्रकाश को स्थायी और मजबूत वस्तुओं पर फेंके और उनकी जगमगाहट का आनन्द लूटें। आत्मिक तत्व शाश्वत एवं स्थायी हैं, वे न तो कभी बदलते हैं और न नष्ट होते हैं, हर अवस्था में उनकी एकसी स्थिति रहती है। आत्मा का जो स्वभाव है वही स्वभाव मन का बना देने से दोनों का समन्वय होजाता है। जैसे सच्चे हृदय से स्त्री और पुरुष अनन्य प्रेम के साथ एक होजाते हैं तो दाम्पति जीवन के आनन्द की सीमा नहीं रहती। इसी प्रकार आत्मा और मन का स्वभाव एक होजाने पर हमारे के अन्तः प्रदेश में जो अपार शांति उद्भूत होती है उसके सुख की संसार के किसी भी लाभ से तुलना नहीं की जासकती है।

"योग विद्या" मन और आत्मा के स्वभाव का एकीकरण करने की विद्या है। दोनों का स्वभाव एक होजाने से मन, वचन और काया से एक ही प्रकार के परम सात्विक कार्य होने लगते हैं। उन दोनों के परस्पर विरोधी होने के कारण जो संघर्ष चलते थे, उन सबकी समाप्ति होजाती है, अन्तर्द्वन्द, भीतर संघर्ष, परस्पर विरोधी विचार, नष्ट होजाने से मनुष्य अपने अन्तस्तल के बहुत हलका, शान्त, स्वस्थ, संतुष्ट, एवं प्रसन्न अनुभव करता है। इस स्थिति को प्राप्त करने के पश्चात ही सांसारिक सम्पदाओं के भोग का आनन्द आता है। मन पर काबू हो, इन्द्रियां संयम में हो, दृष्टिकोण निर्भ्रान्त हो, तो ही मनुष्य प्राप्त वस्तुओं से सुख लाभ कर सकता है अन्यथा वे लाभ उलटे गले की फांसी बन जाते हैं। चटोरा मनुष्य मिष्टान्न के लिए बुरी तरह लालायित फिरता रहता है और जब उसे मिठाई मिल जाती है तो इतना अधिक खा मरता है कि लेने के देने पड़ जाते हैं। इसी प्रकार अन्य वैभवों तथा लाभों से सुख भोगने की अपेक्षा मनुष्य चिन्ता, तृष्णा, मोह, लालसा, लिप्सा मद, अहंकार दंभ, पाप, अनाचार, अतिभोग, कृपणता आदि के चक्कर में फँस जाता है और सुख के स्थान पर दुख भोगने लगता है। पर जिसे आत्म स्थिति प्राप्त हैं, जो योग परायण है वह संयम पूर्वक वस्तुओं का उपभोग करता है, उनके द्वारा प्राप्त होने वाला लाभों को उठाता है और हानियों से बच जाता है।

आन्तरिक आनन्द की निर्मल निर्झरिणी स्नान करने के लिए दुख रहित सुख करने के लिए, योग ही एक मात्र आधार अपना लेने पर मन, वचन, कर्म से हम की दिशा में चलते हैं फलस्वरूप स प्रेम एवं सद्भाव प्राप्त होता है जिस पग पग पर प्रसन्नता एवं प्रफुल्लता के रहते हैं। इस जन्म के समाप्त होने भी पुण्य की प्रचुरता के कारण सद्गति प्राप्त प्राणी स्थिति के अनुसार अच्छे घर एवं मुक्ति प्राप्त करता है।

योग साधन से मन का संयम स्वरूप शक्तियों का प्रचुर अपव्यय ... क्रिया शक्ति बढ़ती है, जिससे अधिक तेजी के साथ मनुष्य उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सकता है। यह विचार गलत है कि "अध्यात्म मार्ग पर चलने वाला सांसारिक वैभवों को प्राप्त नहीं कर सकता।" सच बात यह है कि आत्मवादी व्यक्ति ही सच्चे अर्थों में बलवान शक्ति सम्पन्न और श्रीमान बन सकता है। आज भिखमंगे और अनधिकारी व्यक्तियों के योग मार्ग में अन्धाधुन्ध धंस पड़ने के कारण उसकी अप्रतिष्ठा अवश्य होगई है पर वस्तु

१ जनवरी सन् १६४७ ई०

जीवन का सर्वोपरि लाभ

...संसार में अनेक प्रकार के लाभ हैं। धन, मान, ...ष्ठा, स्त्री, पुत्र, स्वास्थ्य, सहयोग, विद्या, ...रंजन वैभव, सम्पन्नता, साधन, स्थान ... प्रकार के लाभ लोगों को प्राप्त करते ...भों को प्राप्त करने के लिए लोग जन्म ...त्यु पर्यन्त लगे रहते हैं। जितने अंशों ...लाभ मिलजाते हैं उतने अंशों में उन्हें तृप्ति ...भी मिलता है, उतने अंशों में प्रसन्नता

...तोष, तृप्ति एवं प्रसन्नता का अस्तित्व ...है। दूसरे ही क्षण जो प्रतिक्रिया होती है उससे वह प्रसन्नता नष्ट होजाती है। कारण यह है कि किसी वस्तु के न होने पर उसके प्राप्त होने की आशा में जो सुख है वह प्राप्त होजाने पर नहीं रहता। बीमार आदमी स्वस्थता के लिए तरसता है, उसे संसार की सर्वोपरि संपदा समझता है पर जो स्वस्थ हैं उन्हें स्वास्थ्य की कुछ महत्ता प्रतीत नहीं होती। निर्धन के लिए धनी होने की आशा स्वर्ग लाभ जैसी सुख प्रद है पर धनी हो जाने पर उसे उस दशा में कोई विशेषता नहीं मालूम पडती। इसी प्रकार स्त्री हीन, पुत्रहीन, साधन हीन मनुष्य, अपनी अभीष्ट वस्तुओं को प्राप्त करने की आशा से लालायित रहते हैं। पर प्राप्त होते ही उनका रस चला जाता है। क्योंकि वास्तव में उन वस्तुओं के पाने पर भी मनुष्य को सुख नहीं मिलता, अभाव ग्रस्तों की भांति साधन सम्पन्न भी दुखी ही देखे जाते हैं।

वस्तुएं परिवर्तन शील एवं नाशवान होती हैं। वे बदलती और नष्ट होती रहती हैं। मनुष्य चाहता है कि उसकी वस्तु सदा उसी रूप में रहे पर यह संभव नहीं। इसलिए धन, सम्पत्ति, या स्त्री पुत्रों के नष्ट होने पर उलटा शोक, विछोह, दुःख, क्लेश होता है। दूसरी ओर हर लाभ को अधिक मात्रा में प्राप्त करने की तृष्णा बढ़ती है। इस तृष्णा की पूर्ति के लिए मनुष्य चिन्ता, बेचैनी, एवं अत्यधिक श्रम शीलता में लगा रहता है। मन को उस आकर्षण एवं भार से पल भर के लिए छुटकारा नहीं मिलता, फल स्वरूप लाभ के लिए किये गये प्रयत्न प्राणी को अशान्त बनाये रहते हैं। कितने ही व्यक्ति तो पाप पुण्य, उचित अनुचित का विचार करके जैसे भी बने लाभान्वित होने की चेष्टा करते हैं। इस घुड़दौड़ में में वे पगपग पर ठोकर खाते और आहत होते हैं।

इन सब बातों पर गंभीरता से विचार करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि सांसारिक पदार्थों से, वाह्य परिस्थितियों से जो सुख मिलते हैं, जो लाभ प्रतीत होते हैं वे अवास्तविक एवं क्षणिक हैं। सुखाभास मात्र है। असल में मन की संतुष्टि का दूसरा नाम ही सुख है। एक आदमी धन में सुख मानता है वह धन के लिए स्वास्थ एवं शरीर को भी गमा सकता है। दूसरा आदमी विषय सेवन में सुख मानता है और उसके लिए सारी धन संपत्ति को स्वाहा कर देता है। मन जिस ओर झुक जाता है, जिस केन्द्र पर मनोवांछा एकत्रित होजाती है, उसी में लाभ प्रतीत होने लगता है।

आज जिधर हमारा मन लगा हुआ है यदि कल उधर से हट कर दूसरी ओर लग जाय तो कल जो पदार्थ, काम या साधन सुख दायक प्रतीत होते

स्थिति में कुछ भी अन्तर नहीं आया है। अध्यात्म विद्या एक महाविज्ञान है। उसे जितना ही हम कसौटी पर कसते हैं उतना ही वह हर दृष्टि से जीवन के लिए परम उपयोगी विज्ञान सिद्ध होता है।

योग, भारतीय मनोविज्ञान है। मन को हानिकारक, अनुपयोगी, निरर्थक मार्ग में भटकने से रोक कर इस प्रकार शिक्षित किया जाता है कि वह उस मार्ग पर चल सके जो हमारे लिए वस्तुतः उपयोगी, लाभदायक एवं मंगलमय है। जैसे सात्विक आहार विहार करने से शरीर का बल, इन्द्रियों की शक्ति अंग प्रत्यंगों की क्षमता, तेज, सौन्दर्य, फुर्ती, सुडौलता, निरोगता आदि की वृद्धि होती है उसी प्रकार मन का संयम एवं सन्मार्ग में नियोजन करने से आत्मिक स्वास्थ्य बढता है और साथ २ वे विशेषताऐ भी उदभूत होती है जिन्हें 'अष्ट सिद्धि' क नाम से पुकारते हैं आत्म साधना हर ...य के लिए आवश्यक है, उसमें प्रवेश करने का ...मात्र को अधिकार है। वह स्त्री, पुरुष, ...द्र, सबके लिए समान रूप से उपयोगी है। ...और गृहस्थ समान रूप से उसे अपना ...और लाभ उठा सकते हैं। इस विद्या में ... बहुत जो जितना प्रवेश करता है उसे उसी ...त से आत्मलाभ प्राप्त होता है।

...अंक में योग का परिचय कराया गया है। ...ध्यात्म वाद की रूप रेखा उपस्थित ...से पाठक इस तत्व ज्ञान का पर्य... उसकी आधार भित्ति को समझ ...गले के अंक में ऐसी साधना विधियां बताई जावेंगी, जिनके आधार पर मन का सुनिर्माण एवं आत्मसाक्षात्कार हो सकता है।

स्मरण रखिए संसार में अनेक लाभ हैं पर जीवन का सर्वोपरि लाभ 'अध्यात्म' है। उसका महत्व संसार की महान तम वस्तुओं से ऊँचा है, उसका लाभ सृष्टि के समस्त लाभों से अधिक है। इसलिए उस मार्ग में प्रवेश करने के लिए हम सब को प्रयत्न शील होना चाहिये।

ब्रह्म विद्या के सात सिद्धान्त

हर एक विज्ञान, (१) सिद्धान्त (थ्योरी) और (२) प्रयोग (प्रेक्टिस) दो भागों में विभक्त होता है। इन दोनों अंगों को मिल कर ही एक पूर्ण विज्ञान बनता है। जितने भी विज्ञान है उनके सिद्धान्तों को पुस्तकों और वाणी द्वारा जाना जाता है और क्रिया को व्यवहारिक प्रयोग द्वारा सीखते हैं। योग के भी दो अंक हैं। सिद्धान्तों पर विश्वास करने और क्रिया को अभ्यास में लाने में योग का प्रयोजन पूरा होता है।

सिद्धान्तों को बिना समझे और विश्वास में लाये बिना जो लोग केवल अभ्यास में प्रवृत्त रहते हैं वे ऐसा मकान बनाते हैं जिसकी जड़ नीचे जमीन में नहीं है। प्रतीति के बिना प्रीति नहीं हो सकती। शंकाओं को निर्मूल करके, विस्तृत विवेचना के आधार पर जब तक किसी ठोस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा गया है तब तक साधना में पूरा विश्वास होना, भली प्रकार चित्त लगना कठिन है। यदि श्रद्धा के आधार पर किसी प्रकार मन लग भी जाय तो कोई सन्देहास्पद प्रसंग आते ही वह श्रद्धा ढिलमिला जाती है। इसलिए 'विचार के बाद काम' वाली नीति के अनुसार पहले उन तथ्यों, मान्यताओं और विश्वासों को भली प्रकार परखना और समझना चाहिए जिनके द्वारा हमें अपनी मनोभूमि का निर्माण करना है। जब तर्क और प्रमाण के वैज्ञानिक आधार पर हम किन्हीं सिद्धान्तों की परीक्षा कर लेते हैं तब उन पर दृढ विश्वास हो जाता है और उनके अनुसार आत्म निर्माण करने के लिए साधन करने में सुगमता पडती है। योग की सात भूमिका बताई गई हैं जिनका विवेचन नीचे किया जाता है।

(१) **आस्तिक्य**—एक उच्च सत्ता पर विश्वास करना आस्तिक्य है। हम जिस स्थिति में में है उससे ऊँची एक स्थिति है जिसमें अनेक गुना अधिक आनन्द है। पाप तापों से भ्रम जंजालों से

छूट कर एक अधिक ऊंची स्थिति पर पहुँच सकते हैं। आत्मा स्वयं उच्च है, जिन दोषों से वह उच्चता दब गई है उन्हें हटा देने पर वह उन्नत अवस्था पुनः प्राप्त हो सकती है। उस स्थिति का प्राप्त होना सहज एवं स्वाभाविक है। यह आस्तिक विचार है। उस अन्तःकरण पर श्रद्धा करना, उसकी महत्ता स्वीकार करना, उसे प्राप्त करना जीवन लक्ष स्थिर करना आस्तिकता है।

योग की यह प्रथम भूमिका है। इस भूमिका के योग्य मनोवृत्ति की रचना करने के लिए ईश्वर परायणता प्रयोग में लाई जाती है। नियम रूप दृष्टि गोचर होने वाली सूक्ष्म चेतना सत्ता ईश्वर है। जिस प्रकार बिजली अपने नियमों से आप बंधी हुई है, वह अपने नियमों के अनुसार ही अपना काम करती है। इसी प्रकार परमात्मा भी सृष्टिक्रम को अपने नियमानुसार चलाता है। उसके बनाये हुए 'कर्मफल' नियम द्वारा सब प्राणी स्वयं ही सुख दुख प्राप्त करते रहते हैं। वह निन्दा स्तुति से प्रसन्न अप्रसन्न नहीं होता और न किसी के साथ में कोई रियायत, पक्षपात या प्रतिशोध करता है तो भी हमें एक काल्पनिक ईश्वर के बनाने की इसलिए आवश्यकता पडती है कि अस्तिकता की प्रथम भूमिका को प्राप्त कर सकें।

मकान बनाने से पूर्व मस्तिष्क में, कागज पर या खिलौने के रूप में एक नकशा बनाना पडता है। हम उच्च स्थिति प्राप्त करने के लिए उसका आदर्श एक ढांचा मन में तैयार करते और उसका ध्यान, पूजन एवं आराधना करते हैं। राम कृष्ण आदि की ध्यान मूर्तियां यद्यपि कल्पित होती हैं तो भी वे एक उच्च आदर्श की ध्येय मूर्ति के समान हमारे सामने उपस्थित रहती हैं। उनका ध्यान करते समय हम उनमें अपरमित सौन्दर्य, अटूट बल, अनन्त शक्तियां और सात्विक सद्गुणों का महान भंडार अनुभव करते हैं और साथ ही ऐसी भावना करते हैं कि हम इन्हीं में लीन होजावें इन भगवान को प्राप्त करलें। जैसे भृंग का ध्यान करने से भींगुर भी भृंग बन जाता है वैसे ही ध्यान की अद्भुत शक्ति के अनुसार हमारी अन्तःचेतना भी गीली मिट्टी की भांति उन ध्यान के भगवान के सांचे में ढल कर वैसी ही बनने लगती है।

"जो कुछ है सांसरिक उन्नति में ही है, आध्यात्मिक उन्नति से कोई लाभ नहीं" ऐसी मान्यता रखने वाले व्यक्ति नास्तिक हैं। जिनके सामने कोई ध्येय या आदर्श नहीं, जो अपने आत्मिक गुणों को बढाना नहीं चाहते, उन्हें बढाने की आवश्यकता अनुभव नहीं करते वे नास्तिक हैं। इसके विपरीत जो आदर्श जीवन बनाने और बिताने के लिए जितना, इच्छुक, आतुर एवं प्रयत्न शील है वह उतने ही अंशों में आस्तिक है। सादा जीवन होते हुए भी जो आदर्श बातें सोचता, आदर्श विचारों को ग्रहण करता है, भीतर और बाहर से आदर्श बनना चाहता है उसका वह आदर्श वाद ही आस्तिकता है। यही ईश्वर परायणता का मन्तव्य है। इस स्थिति को प्राप्त करने का ही दूसरा ईश्वर प्राप्ति है।

आत्मा ईश्वर का अंश है, वह अन्त[illegible] स्थित है। उसकी स्फुरणाऐं सदा आ[illegible] ओर संकेत करती हैं। इन स्फुरणाओं क[illegible] करना और उन पर श्रद्धा पूर्वक चल[illegible] सान्निध्य है। हमारा अन्तःकरण हमारे [illegible] विचार और कार्य की वास्तविकता को [illegible] समय देखता रहता है, यही ईश्वर [illegible] से हर घडी हमें देखना है। जो [illegible] सामने सच्चा है वह ईश्वर के [illegible] ठहरेगा। जिसकी अपनी आत्मा सतुष्ट ह[illegible], उसका ईश्वर भी प्रसन्न है। आत्मा के सन्तोषका ही दूसरा नाम स्वर्ग है।

इस स्वर्गीय स्थिति को प्राप्त करना अत्यन्त ही, आवश्यक उपयोगी, आनंद दायक, तथा सहज, स्वाभाविक और स्वल्पश्रम साध्य है। इस मार्ग पर चलना आध्यात्मिकता का प्रथम चिन्ह है। उच्च, आदर्शवादी, पवित्र, महान बनने की अभिलाषा आस्तिकता है। इसे अपनाना हर अध्यात्मवादी का प्रथम कर्तव्य है।

(२) तत्व दर्शन—आमतौर से सुनकर पढ़कर या देखकर मनुष्य अपने विचारों का निर्माण करता है। स्वतंत्र तर्क करने की, सत्य असत्य के परीक्षण की शक्ति का लोग बहुत कम प्रयोग करते हैं और समीप वर्ती लोगों में फैले हुए वातावरण के आधार पर अपने विश्वास बनालेते हैं। इस रीति से बनाये हुए विश्वास बहुधा भ्रान्त होते हैं क्योंकि देश काल के अनुसार तथ्यों और उपयोगिताओं में अन्तर पड़ता जाता है। जो नीति, प्रथा एवं विचार धारा आज के लिए उपयोगी है हो सकता है कि कुछ काल बाद वह हानिकारक सिद्ध हो और उसे बदलने की आवश्यकता पड़े। आज विज्ञान का युग है। भौतिक विज्ञान ने अनेकों पुरानी मान्यताओं को अनुपयोगी तथा भ्रान्त ठहरा कर नवीन मान्यताओं को प्रमाणित और प्रतिष्ठित किया है। इसी प्रकार विज्ञान भी प्राचीन एवं [illegible]त विचार धाराओं का संशोधन कर रहा है। [illegible]रों पर अध्यात्म वाद की यही शिक्षा कि [illegible] अन्धविश्वास, दुराग्रह रूढिवाद, या [illegible]ते चिपक कर सत्य ग्रहण करने के लिए [illegible] की भांति तैयार रहना चाहिए। जो [illegible] सत्य हो, जो कसौटी पर खरा उतरे [illegible]चार धारा को अपनाना—यह तत्वदर्शी

[illegible]ल और दूसरे की संपदा दस गुनी [illegible] अपनी गलती और भूल अपने [illegible]डती। अपने को निर्दोष और [illegible]देखने की आदत प्रायः मनुष्य को होती है। कई ऐसे भी दीन हीन होते हैं जो हर बात में डरते हैं और अपने को अपराधी सा समझते रहते हैं। दूसरों की मनोदशा के बारे में प्रायः लोग अपने दृष्टिकोण से देखने की भूल करते हैं। उनकी मनोभूमि इतनी लचीली नहीं होती कि दूसरों की मनोभूमि का ठीक अनुमान लगासकें, इस कमजोरी के कारण अनैक्य, कलह, द्वेष एवं घृणा की वृद्धि होती है। दार्शनिक दृष्टि रखकर हमें अपनी और दूसरों की मनःस्थिति समझने परखने और विश्लेषण करने को निरपेक्ष भाव से प्रयत्न करना चाहिए ताकि तत्व दर्शन प्राप्त हो सके।

संसार नाशवान है, इसकी हर एक वस्तु हर घड़ी बदलती रहती है और परिस्थितियों के प्रभाव से एक स्थान से दूसरे स्थान को चली जाती है। इसलिए किन्हीं वस्तुओं के प्रति हमें ममता और मालिकी का भाव न रखना चाहिए वरन् उन वस्तुओं का सर्वोत्तम सदुपयोग करने का, कर्तव्य धर्म के पालन में उनका सहारा लेने का प्रयत्न करना चाहिए। वस्तुऐं परमात्मा की हैं, उसी के विधान से वे नष्ट होती और बदलती हैं इसलिए किसी वस्तु के नष्ट होने, किसी स्वजन के चले जाने के लिए दुखी एवं चिन्तित न होना चाहिए। इसी प्रकार सर्वोत्तम कार्य प्रणाली अपनाने पर भी सफलता का कोई निश्चय नहीं। अतएव सफलता असफलता पर अपना हर्ष शोक निर्भर करने की अपेक्षा कर्तव्य पालन पर ही सन्तोष को केन्द्रित करना चाहिए। यही कर्मयोग है। कर्मयोग का, अनाशक्ति का भाव धारण करना तत्व दर्शन है।

मन में सदा शान्ति बनाये रहना, सांसारिक आपत्तियों को स्वप्नवत् समझना, कठिन प्रसंगों में धैर्य और साहस के साथ अविचल रहना, अरुचिकर प्रसंगों में भी हँसते रहना, भय जनक अवस्थाओं में भी निर्भय रहना, मानसिक शान्ति को किसी भी स्थिति में न खोना तत्वदर्शन है। तत्वदर्शी जानता है मैं अविनाशी, अशोष्य, अछेद्य, आत्मा हूँ, प्रिय अप्रिय परिस्थितियों के झोंके मेरा कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते। इस महासत्य को समझ कर वह आत्म शान्ति को किसी भी कारण से नष्ट नहीं होने देता सदा प्रसन्न रहता है।

विचारों को संशोधन के लिए तैयार रहना, सत्य की जिज्ञासा रखना, आत्म निरीक्षण, दूसरों की मनोभूमि का ठीक अन्दाज, नाशवान चीजों में ममता न रखना, कर्तव्य परायणता, अनसक्ति, सदा प्रसन्न रहना, संक्षेप में यही तत्व दर्शी के लक्षण हैं।

(३) आत्म निष्ठ—अपने को दैवाधीन, परवश, क्षुद्र, तुच्छ, दीन, हीन, मायाबद्ध जीवन मान कर, शुद्ध, पवित्र, सनातन, परमात्मा का अंश मानता, एवं कर्ता भोक्ता होने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेना आत्म निष्ठा है।

मानाकि हमसे नित्य प्रति भूलें होती हैं। यह हमारे शरीर और मन की भूलें हैं, नित्य दंड पाकर वे इन भूलों की क्षतिपूर्ति भी करते रहते हैं। आत्मा जो कि हमारी मूल सत्ता है यह इन नित्य की भूलों से ऊपर है। वह कभी भूल या पाप में प्रवृत्त नहीं होती। हर बुरा काम करते समय विरोध करना और हर अच्छा काम करते समय संतोष अनुभव करना यह उसका निश्चित कार्यक्रम है। अपने इस सनातन स्वभाव को वह कभी नहीं छोड सकती, उसकी आवाज को चाहे हम कितनी ही मंद करदें कितनी ही कुचलदें कितनी ही अनसुनी करें तो भी वह कुतुबनुमा की सुई की तरह अपना रुख पवित्रता की ओर ही रखेगी। उसकी स्फुरणा सतोगुणी ही रहेगी इसलिए आत्मा कभी अपवित्र या पापी नहीं हो सकती। चूँकि हम शरीर और मन नहीं वरन् आत्मा है, इसलिए हमें अपने को सदैव उच्च, महान,पवित्र, निष्पाप परमात्मा का पुत्र ही मानना चाहिए। अपने प्रति पवित्रता का भाव रखने से हमारा शरीर और मन भी पवित्रता एवं महानता की ओर द्रुतगति से अग्रसर होता है।

हम स्वयं ही कर्ता भोक्ता है। कर्म करने की पूरी पूरी स्वतंत्रता हमें प्राप्त है। जैसे कर्म हम करते हैं ईश्वरीय विधान के अनुसार वैसा फल भी तुरन्त या देर में मिलजाता है। इस प्रकार अपने भाग्य के निर्माण करने वाले भी हम स्वयं ही है। परिस्थितियों के जन्म दाता हम स्वयं हैं। जैसे गुण, स्वभाव, विचार एवं कार्य हम अपनाते हैं उसीके अनुसार परिस्थितियां भी हमारे सामने आती रहती हैं। ईश्वर अपनी ओर से दंड पुरुष्कार नहीं देता वरन् हमारे कर्मों को अनुसार फल की व्यवस्था मात्र कर देता है। कभी कभी कोई बुरे व्यक्ति अकारण हमारे ऊपर आक्रमण करते हैं एवं कोई सामूहिक दैवी विपत्ति तूफान, बाढ आदि आकर हमें दुख देते हैं। यह सामूहिक वातावरण के पाप पूर्ण होने का फल है। समाज के हम भी एक अंग हैं, समाज को शुद्ध बनाना हमारा भी कर्तव्य है उस कर्तव्य की उपेक्षा करने के कारण हम भी अप्रत्यक्ष रूप से दोषी हैं और फल भोगते हैं। धर्म के लिए कष्ट सहना एक प्रकार का तप या बीज बोना है जिसका उत्तम फल भविष्य में मिलेगा। इस प्रकार ग्रह नक्षत्र, देवदानव भाग्य या किसी दूसरे को अपनी परिस्थितियों का निर्माता अपने आपको ही मानना चाहिए और उत्तम स्थिति प्राप्त करने के लिए आत्म निर्माण करना चाहिए।

स्वर्ग नरक बन्ध मोक्ष चाहे जिसे हम स्वेच्छा पूर्वक ग्रहण कर सकते हैं। भले बुरे शरीरों में पुनर्जन्म लेना यह भी हमारे अपने आत्म निर्माण के ऊपर अवलंबित है। आत्मा की,आत्मा के औजार मनकी, मनके औजार शरीर की, शक्तियां अ[illegible] विचित्र, आश्चर्य जनक एव महान है। उन[illegible] हम अपने लिए और दूसरों के लिए ब[illegible] पूर्ण एव आनन्ददायक अवसर उपस्थित[illegible] हैं। हमारी निर्माण शक्ति और उत्पादन[illegible] कोई अन्त नहीं।

आत्मस्वरूप का बोध होने पर मनुष्य [illegible] से मुक्त होजाता है। उपनिषदों के अन[illegible] में दो चेतना हैं एक क्षर दूसरी अक्ष[illegible] वान है यह मन बुद्धि चित्त अहं[illegible] सूक्ष्म शरीर है यह भी स्थूल शर[illegible] भौतिक पदार्थ है। आमतौर से हम [illegible] जब "मैं" या "हम" शब्द का प्रयोग करते हैं तो उसका तात्पर्य स्थूल शरीर या सूक्ष्म शरीर से होता है। शरीर और मन के सुख, लाभ और आनन्द की दृष्टि से ही लोग सोचते और काम करते हैं। पर जब अक्षर का आत्मा का अवलम्बन हम ग्रहण कर लेते हैं आत्मा की भूमिका में जाग्रत होकर आत्म भाव से सोचते हैं तो अन्तराल में 'सोऽहम्' की ध्वनि निकलती है। तब वह आत्मा की दृष्टि से सोचता है। आत्मा के स्वभावानुरूप कार्य

करता है। यही आत्मबोध की, आत्म दर्शन की, आत्म प्राप्ति की, आत्म निष्ठा की, स्थिति है। क्षर को नष्ट करके अक्षर को प्राप्त कर लेना ही जीवन मुक्ति है।

अपने को शुद्ध मुक्त अविनाशी आत्मा मानना, कर्म फलों का एवं आत्म निर्माण का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेना, अपनी महानता से परिचित होना, क्षर भाव को भूल कर अक्षर भाव में जागृत होना, यह आत्मनिष्ठा के लक्षण हैं।

(४) शक्ति साधना—जो कुछ भी मिलता है शक्ति के द्वारा मिलता है। अशक्तों को अपने लिए कुछ प्राप्त करना तो दूर आत्म रक्षा भी कठिन है। शारीरिक निर्बलों को रोगों तथा बलवानों के आक्रमण का शिकार होना पडता है। आर्थिक निर्बलों को गरीबी, अभाव भूख आदि घेरे रहती हैं, मानसिक निर्बलों को चालाकों द्वारा ठगा जाता है, उन्हें भोंदू बुद्धू मूर्ख बनाया अपमानित किया जाता है। आध्यात्मिक निर्बलों को काम क्रोध, लोभ, मोह, शोक, चिन्ता भय आदि भीतरी शत्रु सताते रहते हैं। सामाजिक, बौद्धिक, व्यवसायिक दुर्बलताओं के भी ऐसे ही दुखदायी दुष्परिणाम भुगतने पडते हैं।

इसके विपरीत जो जिस दृष्टि से बलवान है उसे उस प्रकार के साधन, वैभव और आनन्द प्राप्त होते हैं। अशक्ति एक पाप है। जिसके कारण अन्याय, शोषण एवं आक्रमण करने वालों को प्रोत्साहन मिलता है। दुर्बल को जालिम का जनक कहा गया है। जिस प्रकार गंदगी से मक्खियां, एवं दुर्गन्ध पैदा होती है उसी प्रकार दुर्बलता से पाप पैदा होते हैं। दुर्बल व्यक्ति की नैतिकता भी गिरजाती है। कहते हैं खाली बोरा सीधा खड़ा नहीं रह सकता वह गिर ही जाता है। अभावग्रस्त और दुखी मनुष्य अपनी आवश्यकताओं से प्रेरित होकर दुष्कर्मों पर आसानी से उतारु होजाते हैं। इस प्रकार वह स्वयं भी पाप के गर्त में गिरता है और अन्याय करने वालों की संख्या में वृद्धि करके दूसरों को भी पाप कुण्ड में गिराता है मानसिक और सामाजिक अशान्ति की जननी दुर्बलता ही है। कमजोर मनुष्य न तो स्वयं शान्त रहता है और न दूसरों को शान्ति रहने देता है।

शक्ति का शिवके साथ अन्यन्य संबंध है। लक्ष्मी, नारायण, राधाकृष्ण सीताराम, प्रकृति पुरुष,की भांति शक्ति का प्राण से अगाढ़ संबंध है। उसकी साधना से ही हम अभीष्ट बलों को प्राप्त करते हैं और लक्ष स्थान तक पहुँचते हैं। स्वर्ग, मुक्ति और ब्रह्म प्राप्ति यह सब भिक्षा रूप में किसी की कृपा से नहीं मिलते वरन् पुरुषार्थियों द्वारा अपनी अटूट शक्ति से प्राप्त किये जाते हैं। आन्तरिक और बाह्य, लौकिक और पारलौकिक उन्नति के लिए सुखशान्ति के लिए, शक्ति साधना आवश्यकीय है। हर दृष्टि से बलवान बनना अध्यात्म वादियों का आवश्यक कर्तव्य है।

(५) संयम—मनुष्य जो थोडी बहुत शक्ति प्राप्त करता है प्रायः उसका दुरुपयोग कर देता है। शारीरिक बल को, इन्द्रियों की शक्ति को, धन को, बुद्धिको, मनोबल को, सामाजिक आस्था को कितने ही लोग फिजूल बेकार, निकम्मी और निरुद्देश्य बातों में खर्च कर डालते हैं और कितने ही चटोरे पन, तृष्णा, लोलुपता एवं अहंकार में डूब कर हानिकर पापपूर्ण, अनुचित बातों में खर्च करने लगते हैं। इस मार्ग के अपनाने पर हमें प्रायः बहुत घाटे में रहना पडता है। धन कमाने के लिए जितनी बुद्धिमानी की जरूरत है उससे अधिक बुद्धिमानी धन खर्च करने के लिए और सुरक्षित रखने के लिए चाहिए। अन्यथा वह पसीनों से कमाया हुआ धन यों ही निरर्थक मार्गों द्वारा बह जाता है और उसे उस लाभ एवं आनन्द से वंचित रहना पडता जो है कि धन कमाने से मिलना चाहिए था।

इन्द्रिय शक्ति को ही लीजिए उसका सदुपयोग किया जाय तो जीवन बडा सुखी और समृद्ध हो सकता है पर ऐसा न करके लोग उसका दुरुपयोग करते हैं और दुख उठाते हैं। वीर्य शरीर का सार है, उसकी कुछ बूंदों से एक मनुष्य की उत्पत्ति

होती है उसके संचय से हर एक अंग पुष्ट होता है, स्फूर्ति, ताजगी, चैतन्यता, प्रफुल्लता, उत्साह एवं तन्दुरुस्ती स्थिर रहती है, दीर्घ जीवन प्राप्त होता है। पर इसी शक्ति को विषय वासना में दुरुपयोग करने से शरीर अशक्त एवं रुग्ण बन जाता है और असमय मृत्यु के मुख में जाना पडता है। जिह्वा का एक कुशल डाक्टर की भांति मुख पर पहरेदार की भांति इसलिए नियुक्त है कि पेट में जाने से पहले परीक्षा करे कि यह वस्तु ग्रहण योग्य है या नहीं। पर इस प्रयोजन की अपेक्षा जब उसे चटोरा बनाकर षट्रस व्यंजन जब पेट में अन्धाधुन्ध ठूँसे जाते हैं तो आमाशय, आतें, जिगर आदि पेट के अवयव खराब होजाते हैं और अस्वस्थता आघेरती है। इसी प्रकार अन्य इन्द्रियों की शक्ति का लाभदायक कार्य के लिए संचय न करके, अपव्यय किया जाता है तो वे नष्ट या विकृत होजाती है और हमें आनन्द के स्थान पर पीडा का उपहार देती हैं।

धन द्वारा जहां, स्वास्थ, धर्म, शिक्षा, प्रतिष्ठा आदि की प्राप्ति होती है वहां दुरुपयोग से बीमारी, कुसंस्कार पाप, बदनामी, घमंड, बेचैनी आदि भी खरीदी जा सकती हैं। बुद्धि से हम महापुरुष एवं महात्मा भी बन सकते हैं और असुर, पिशाच तथा शैतान भी। इसलिए जहां शक्ति का उपार्जन आवश्यक है वहां उसको अपव्यय से बचाकर आवश्यकता के लिए संचय तथा उपयोगी कार्यों में व्यय करने की सावधानी भी आवश्यक है। यह सावधानी ही संयम है।

संयम का अर्थ स्वाभाविक एवं आवश्यक इच्छाओं, क्षुधाओं, आवश्यकतों को अकारण कुचल डालना नहीं है। ऐसा करने से तो कुचली हुई मनोवृत्तियों का मनोविज्ञान शास्त्र के अनुसार बडा भयंकर रूप ब सकता है और उससे शारीरिक एवं मानसिक भयानक रोग उठ खड़े होसकते हैं। विवेक पूर्वक हमें यह विचारना चाहिए कि किस शक्ति को किस कार्य के लिए किस मात्रा में व्यय करना चाहिए। विवेक जैसा निर्णय करे उसके अनुसार शक्तियों का नियंत्रण भी करना चाहिए और व्यय भी। रोक हमें अपने चटोरे पन पर लगानी है, निग्रह लोलुपता का करना है, जिस तृष्णा और अविवेक के कारण मन हानि लाभ न सोच कर क्षणिक आनन्द के लिए सत्यनाशी मार्ग पर दौड पड़ता है उस कमजोरी पर विजय पानी है। हमें अपनी लोलुपता पर नियन्त्रण करना चाहिए उसे परास्त करना चाहिए और विवेक के आधार पर इन्द्रिय भोगों का तथा जीवन के अन्य आनन्दों का उपभोग करना चाहिए।

समय का एक एक क्षण अमूल्य सम्पत्ति है, स्वास्थ्य सम्पत्ति है, जीवन सम्पत्ति है, मस्तिष्क सम्पत्ति है, इसके अतिरिक्त धन दौलत, योग्यता शिक्षा आदि भी सम्पत्ति है। इन सभी शक्तियों को बढाने के लिए प्रयत्न शील रहना चाहिए। इनके एक एक कण को फिजूल खर्ची से बचाना चाहिए और सर्व श्रेष्ठ लाभदायक उपयोग में उनका खर्च करना चाहिए। यही संयम का तत्व है।

(६) आत्म विस्तार—जिसका [illegible] जितना छोटा संकीर्ण है वह उतना ही [illegible] और जिसका 'अहम्' जितना विस्तृत [illegible] विशाल, जितना व्यापक है वह उतना [illegible] है। आत्मोन्नति का अर्थ अपनी लघुता को [illegible] को महान क्षेत्र में विस्तार करना है। आत्म [illegible] परमआत्मा (परमात्मा) बना देने [illegible] समस्त अध्यात्मिक साधन हैं। आ[illegible] की आत्मा है, परमात्मा अथवा [illegible] संसार की व्यापक आत्मा को [illegible] व्यष्टि को विशाल समष्टि से घुला देना यह परमात्मा की प्राप्ति है। यह समस्त विश्व परमात्मा का ही साकार रूप है जैसा कि गीता में विराट् रूप दिखा कर अर्जुन को बताया है। शास्त्र बचनों में भी ऐसा ही कहा गया है। पुरुष एवेदं सर्वं (ऋग्वेद १०.९०।२) आत्मा वा इदं सर्वं (छा. ३. ७।२५।२) नारायण इदं सर्वं (कारा० ३०३) ब्रह्म खल्विदं सर्वं (मैत्री. उप ४।६) वासुदेवःसर्वं (गीता ७।१९) इस सर्व में अपने को घुलादेना अध्यात्म का चरम उद्देश्य है।

समाज के लाभ के लिए, सार्वजनिक हित के लिए, अपने तुच्छ स्वार्थ को निछावर कर देना, आत्मविस्तार है। अपने को समाज का एक अंग मान कर समाज सेवा की दृष्टि से ही अपनी सेवा भी करना ठीक है, पर समाज को तनिक भी क्षति पहुँचा कर अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए आध्यात्मवादी कोई इच्छा नहीं करता। उसकी विचारने और काम करने की हर एक क्रिया के पीछे सार्वजनिक हित का ही ध्यान रहता है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के दृष्टिकोण से वह सबको अपना समझता है और 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के अनुसार दूसरों के दुख को अपना दुख और दूसरों के सुख को अपना सुख समझता है। समाज की सुख शान्ति और सुसंचालन यही उसकी कार्य प्रणाली का मेरुदंड होता है। इसी आधार पर वह अपनी जीवन नीति निर्धारित करता है।

छोटे लड़के केवल अपने खाने पहनने और कुरते की चिन्ता रखते हैं। कुछ बड़े होजाने पर स... होता है तब वह अपने साथ अपनी पत्नी ... चिन्ता करता है उसे अच्छे भोजन, वस्त्र ... कर उतना ही प्रसन्न होता है जितना ... पन में अपने लिए पाकर प्रसन्न होता ... के बाद बच्चे होते हैं उनकी संख्या बढ़ती है ... आत्मभाव स्त्री से बढ़कर बच्चों तक फैलता ... चिन्ता उसी प्रकार करनी पड़ती है ... के सुख दुख में अपने को भी ... अनुभव होता है। इसके बाद कुटुम्ब ... सारे कुटुम्ब में अपनापन फैल जाता है। तब खुद खाने की अपेक्षा दूसरों को खिलाने में अधिक आनन्द आता है। एक गृहिणी अपने पति, भ्राता और पुत्र को स्वादिष्ट भोजन कराते समय स्वयं खाने की अपेक्षा अधिक आनन्द अनुभव करती है। जब यह मनोदशा अधिक परिपक्व और पुष्ट होजाती है, मनुष्य सब में अपने को और अपने को सब में देखने लगता है तो वह सफल आध्यात्मवादी बन जाता है, आत्मोन्नति का यही क्रम है। व्यष्टि को समष्टि पर, खुदी को खुदा पर, बलिदान करना, आत्म समर्पण करना, शरणागति होना यही है। स्वार्थ और परमार्थ को एक कर देना, आत्म विस्तार का व्यवहारिक रूप है।

(७) ब्रह्म परायणता—अध्यात्मवाद के अनेक रहस्यों, कर्मों, भेद उपभेदों को जान लेने के बाद भी कितने ही मनुष्य बहुत निम्न श्रेणी के और गिरे दर्जे के रहते हैं। बौद्धिक प्रौढता के कारण वे इस संबंध में बातें तो बहुत बढी चढी कर सकते हैं। पर जब तक अन्तःकरण तरंगित न हो, उसमें लचक, कोमलता, श्रद्धा, आस्था, निष्ठा, विश्वास न हो तब तक आचरण में वे चीजें नहीं आती। कितने ही मनुष्यों की मनोभूमि बडी कठोर, ऊजड, नीरस, शुष्क एवं हठीली होती है। ऐसे व्यक्ति निष्ठुर, नास्तिक, क्रूर, घमंडी, अहंमन्य, खुदगर्ज, तोताचश्म, मतलबी, निर्दयी होते हैं। दूसरों से दुखदर्द से न तो उनकी छाती पसीजती है और न दूसरों की सुख शान्ति देखकर उन्हें सन्तोष होता है। ऐसे पाषाण हृदयों को एक प्रकार का नास्तिक ही कहना चाहिए।

ईशोपनिषद् में ईश्वर को "कवि" कहा गया है। कवियों की मनोभूमि बडी लचीली होती है। वे विश्व की अनुभूतियों को समझते, ग्रहण करते और उनसे प्रभावित होते हैं। संगीत, साहित्य, कला से रहित मनुष्यों को नीति कारों ने बिना सींग पूंछका पशु कहा है। कारण मानवीय अन्तःकरण की सरसता के द्वारा ही मनुष्य सच्चे अर्थों में मनुष्य बनता है। संगीत, साहित्य एवं कला द्वारा मनुष्य का हृदय लहराता है, तरंगित होता है, लचीला बनता है, सौन्दर्य की अनुभूति करता है। 'कवित्व' ईश्वरीय भाव है। अन्तस्तल की सरसता द्वारा ही भक्ति योग की साधना होती है। पाषण से कठोर, शुष्क हृदय वाले व्यक्ति, भक्तिरस के दैवी स्वाद का आस्वादन नहीं कर सकते।

अन्तःकरण को सरस बनाने के लिए आध्यात्मिक कवित्व का आचरण करना होता है। दया, करुणा, सहानुभूति, उदारता, क्षमा, विनय मधुर भाषण, शिष्टाचार, दान,सेवा,त्याग पवित्रता,

निष्कपटता, सात्विक प्रेम, प्रसन्नता सरीखे सद्गुणों को विचार क्षेत्र में स्थान देने से सात्विकता की मंद मंद भीनी सुगंधि से मनोभूमि आनंदित हो उठती है। इस प्रकार की भावनाओं का चिन्तन करने से, इस प्रकार के व्यवहार की कल्पना करने से अन्तःलोक पुलकित एवं गद्गद होजाता है। आचरण में इस प्रकार के भावों को कार्यान्वित करने पर तो मनुष्य का रोम रोम आनन्द से परिपूर्ण हो जाता है। सात्विकता को विचारों और कार्यों में आश्रय देने से जो उच्चकोटि का आत्म सन्तोष प्राप्त होता है उसे ही ब्रह्मानन्द या परमानन्द कहते हैं। आत्मा का आशीर्वाद इसी स्थिति में पहुँचने वाले प्राप्त करते हैं।

पवित्रता में, पवित्र दृष्टि कोण में, सच्चे सौन्दर्य की अजस्र धारा बहती है। शरीर की निर्मलता वस्त्रों की सफाई, घर की स्वच्छता, प्रयोग में आने वाले वस्तुओं की सुव्यवस्था यह सब आरंभिक पवित्रताऐं हैं, इन्हें आचरण में लाने के साथ साथ विचारों की पवित्रता, सात्विकता एवं महानता पर ध्यान देना चाहिए। हमारा हृदय प्रेम से सरावोर रहे। पापियों को रोगी समझ कर हम उनकी सेवा करें, भूले भटकों को बाल बुद्धि समझ कर उनके अज्ञान को दूर करने का प्रयत्न करें, दूसरों की कमजोरियों को उदारता पूर्वक निवाहें और अपनी महानता द्वारा सबको आगे बढ़ाने का उपाय करें।

सृष्टि का, प्रकृति का, कणकण सौन्दर्य से परिपूर्ण है। एक कलाकार की भांति, एक तत्वदर्शी दार्शनिक की भांति सृष्टि में सर्वत्र विखरे हुए ईश्वरीय सौन्दर्य का निरीक्षण करें। नदी, पर्वत, बन उपवन, वृक्ष पौदे घास आकाश, नक्षत्र यह सब अपार सौन्दर्य के केन्द्र हैं कलापूर्ण चित्र जैसे प्रातः सायं का आकाश कला के जीवित उपहार हैं पुष्प, चिडियां निराले निराले रंग और स्वभाव के जीव जन्तु पशु पक्षी, अपनी मनोहर की सानी नहीं रखते। बालकों का भोलापन, किशोरों की चंचलता, तरुणों की उमंगे, पौदों की जिम्मेदारी तथा वृद्धों का अनुभव अपना अलग२ सौन्दर्य रखतेहैं। माता, बहिन, पत्नी और पुत्री के नेत्रों में जो अपने अ[illegible] ढंग की सरसताऐं हैं उनकी सुन्दरता का [illegible] वारापार नहीं ऐसे प्रभु के सर्वाङ्गीण सुन्दर उप[illegible] में हमें आनंदित रहना चाहिए। इस नन्दन बन [illegible] कांटे बीनते और रोड़े हटाते हुए भी हमें आनंदि[illegible] ही रहना चाहिए। अपने चारों ओर प्रभु की सौन्द[illegible] मयी कला का रूप निरीक्षण करें और हर [illegible] आनंदित रहें।

अन्तःकरण को सरस बनाना, पवित्र रख[illegible] सतोगुणी तत्वों से विचार और कार्यों को सरो[illegible] रखना, चारों ओर बिखरे हुए दैवी सौन्दर्य [illegible] देखकर आनंदित एवं संतुष्ट रहना, यह ब्रह्म पर[illegible] यणता है। ब्रह्म परायणता का आनन्द ही ब्रह्मा[illegible] एवं परमानन्द है। इसका रस सर्वोपरि है। इ[illegible] रस का आस्वादन करने की तृषा से जीव इ[illegible] उधर भटकता है जब उसे यह रस मिलजाता [illegible] तो उसे आत्म तृप्ति मिलजाती है। उस [illegible] ही ईश्वर की झांकी होती है। श्रुति [illegible] "रसो वै स"। जिस रस को श्रुतियों [illegible] बताया है वह यही ब्रह्म परायणता का [illegible]

यह सात आध्यात्मिक भूमिकाऐं [illegible] की प्राप्ति के लिए ही नाना प्रकार [illegible] योग जप, तप, यज्ञ आदि किये जाते हैं।

आदमी जितना सोचता है [illegible] सकता; जितना बोल सकता है [illegible] सकता, जितना लिख सकता है उतना कार्य नहीं कर सकता। इस सिद्धान्त के विरुद्ध जो आदमी करता हुआ दिखाई देता है वह शीघ्र ही उन्नति के शिखर पर चढ जाता है।

× × ×

परमात्मा ने स्वतः ही आंख कान हाथ पैर नाक इत्यादि दो दिए हैं किन्तु जबान एक दी कि कम बोला करो ज्यादा नहीं।

× × ×

साधना की वैज्ञानिक आधार।

पिछले लेख में अध्यात्य में उन सात सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है जिनके आधार पर कि अध्यात्म की आधार शिला खडी हुई है। नाना विधि की साधनाऐं अभ्यास, अध्यात्मिक प्रक्रियाऐं इन सात आधारों को मजबूत करने के लिए ही हैं, मन को समझा देना और उसका निर्माण करना दो अलग बातें हैं। पुस्तकें पढ कर, भाषण सुनकर, वार्तालाप से, सत्संग. विचार विनियन, चिन्तन, आदि के द्वारा मन एक बात को समझ लेता है, उसे ठीक मान लेना है। पर इतने मात्र से ही वह मान्यता व्यवहार रूप में परिणत नहीं होजाती संस्कार नहीं बन जातीं। कितने ही व्यक्ति ऐसे हैं जो सत्य, दया, प्रेम न्याय, संयम आदि सत् सिद्धान्तों को ठीक मानते हैं, उनकी महत्ता स्वीकार करते हैं और उनका समर्थन करते हैं फिर भी [illegible]हार में उनके कार्य इन मान्यताओं के विलकुल [illegible]त होते हैं। सत्य का उपदेश करने वाले [illegible]चारी, साधु का बेष धरे हुए दुराचारी, [illegible]ी बगुलाभगत, बाहर के मीठे भीतर के [illegible]नेकों मनुष्य देखे जाते हैं। विचार और [illegible] भारी अन्तर रखने वाले व्यक्तियों की [illegible]।

[illegible] का कारण यह है कि वहिर्मन जिस [illegible] है, उसकी अन्तर्मन को आदत नहीं [illegible] का काम सोचना, विचारना, समझना और किसी निष्कर्ष पर पहुँचना है। तर्क, उपदेश परिस्थिति आदि के कारण विचारों में क्षण भर में परिवर्तन होसकता है। पर अन्तर्मन की स्थिति इससे सर्वथा भिन्न है। वह विचारों को नहीं विश्वासों एवं संस्कारों को धारण करता है। वह आदतों का भंडार है। जैसी आदत यह पकड लेता है उसे मुश्किल से छोडता है। शरीर की क्रियाऐं इस अन्तर्मन के आधार पर ही होती हैं। कई आदमी नशा छोडना चाहते हैं, उसकी बुराई करते हैं, परेशान है पर नशा छूटता नहीं। आदत उन्हें नशा पीने के लिए मजबूर कर देती है। इसी प्रकार अन्य मामलों में भी जिस ओर मनुष्य अभ्यस्त होजाता है उसी लकीर पर गाडी का पहिया लुढकता जाता है। इस अभ्यस्तता को ही संस्कार कहते हैं। अन्तर्मन पर संस्कार जमने में बहुत समय लगता है, वे धीरे धीरे कठिनाई से जमते हैं, पर जब जम कर पक्के होजाते हैं तो फिर इतने मजबूत होते हैं कि छुडाये नहीं छूटते।

अध्यात्मिक सिद्धान्तों को समझ लेना बहुत आसान है। पिछला लेख पढकर मामूली पढा लिखा आदमी उन्हें समझ सकता है। उनके संबंध में जो तर्क वितर्क हों उन्हें विचार, चिन्तन या सत्संग से दूर किया जासकता है। वहिर्मन का काम पूरा होगया। उसका क्षेत्र, समझना सोचना और निर्णय करना इतना ही है। इतना कार्य एक दो दिन में भली प्रकार होसकता है। पर केवल इतने मात्र से ही कोई व्यक्ति आत्मवान् नहीं बन सकता आत्म लाभ नहीं कर सकता। जब तक अन्तर्मन उन विचारों को विश्वास एवं संस्कारों के रूप में इतनी मजबूती से न पकडले कि जीवन की क्रिया पद्धति उसीके अनुसार अपने आप चलने लगे, तब तक आत्म शिक्षा की पूर्णता नहीं कही जा सकती। इसलिए सिद्धान्तों की शिक्षा के साथ २ ऐसे साधन, अभ्यास भी करने पडते हैं जिससे अन्तर्मन का उस सांचे में ढलना आरंभ होजाय। साधना की यही उद्देश्य है यही प्रयोजन है। साधना द्वारा हम अन्तर्मन का वैसा निर्माण करते हैं जैसा कि अपने भावी जीवन को बनाना या चलाना चाहते हैं।

वहिर्मन का क्षेत्र सीमित है। विचार शक्ति का केन्द्र खोपडी के मध्य भाग में है। माथे से लेकर आधी खोपडी के मध्यभाग तक इस प्रकार के तन्तु और परमाणु हैं जो सोचने समझने और किसी नतीजे पर पहुँचने का कार्य करते हैं। नेत्रों द्वारा जो देखते जाता है, कानों से जो सुना जाता है, बुद्धि से जो सोचा जाता है वह सब प्रवाह

बहिर्मन के इन परमाणुओं से टकराता है और उस प्रयोग शाला में हलचल शुरू होती है। विभिन्न मानसिक शक्तियाँ उपस्थित प्रश्न को सुलझाने में जुट पड़ती हैं और उनके सम्मिलित प्रयत्न से एक निष्कर्ष निकल आता है। पर अन्तर्मन की स्थिति इससे भिन्न है। खोपड़ी के पिछले भाग में यह एक रूखे, कर्कश, जिद्दी, लड़ाकू, स्वार्थी, निरक्षर भट्टाचार्य, गँवार की तरह चुपचाप बैठा रहता है और कभी न थकने वाले भूत की तरह यंत्रगति से अपना काम करता रहता है। बहिर्मन रात को सो जाता है पर अन्तर्मन तब भी अपना काम करता रहता है। उसकी खटपट से बेचारे बहिर्मन की नींद उचट जाती है और औंधे सीधे स्वप्न देखने को उसे विवश होना पड़ता है।

अन्तर्मन का केन्द्र खोपड़ी के पिछले भाग में है, फिर भी उसका कार्यक्षेत्र समस्त शरीर है। समस्त शरीर में फैले हुए ज्ञान तन्तु, स्नायुजाल, रक्त सूत्र अन्तर्मन के केन्द्र से सम्बद्ध हैं। शरीर के द्वारा जो क्रियाएं होती हैं उन्हीं के आधार पर आदतें बनती हैं और उन्हीं से स्वभाव एवं संस्कार बन जाते हैं। केवल विचार करने मात्र से अन्तर्मन का परिवर्तन नहीं होता, उसे बदलने के लिए क्रियाओं की, घटनाओं की, समारोहों की, प्रदर्शनों की, परिस्थितियों की आवश्यकता होती है। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए विविधि साधनाओं का निर्माण हुआ है। योग साधना का यही उद्देश्य है। जिस क्रिया पद्धति से अन्तर्मन को इच्छित ढांचे में ढाला जाता है उसका ही नाम साधना है। अन्तर्मन के इच्छित ढांचे में ढल जाने पर दोनों मन निर्विरोध होजाते हैं, इससे बड़ी शांति मिलती है। इन दोनों के विरोध में अशांति एवं बेचैनी है जब इन दोनों का एकीभाव होजाता है तो अपनी स्थिति पर मनुष्य को बड़ा संतोष होता है। विचारों के अनुसार कार्य भी तभी होते हैं जब उस प्रकार का स्वभाव बन जाता है। इस प्रकार का स्वभाव या संस्कार बन जाना ही आध्यात्मिक साधना का सफलता है। यह सफलता प्राप्त होते ही समस्त आत्मिक सम्पन्नताएं करतलगत होजाती हैं।

साधनाओं का उद्देश्य।

अन्तर्मन का निर्माण करने के लिए प्रयत्न क्रियाओं को अपनाने की जरूरत है, यह स्पष्ट किया जा चुका है। व्यवहारिक रूप से जिन क्रियाओं का आयोजन हम करते हैं उनकी छाप मन के भीतरी प्रदेश पर पड़ती है। धीरे धीरे अभिरुचि एवं अभ्यस्तता उसी क्षेत्र में परिपक्व होने लगती है और मनुष्य उसी ढांचे में ढल जाता है। अध्यात्म विद्या के आचार्यों ने इसी लिए योग की अनेक साधनाएं विनिर्मित की हैं और इस मार्ग के पथिकों को साधना में प्रवृत्त होने का आदेश किया है।

आत्म विद्या के सात साधन पिछले पृष्ठों पर बताये जाचुके हैं। इन सातों को हर कसौटी पर कस कर उनकी महत्ता का परीक्षण किया जासकता है। इन तथ्यों का विस्तार होने से समाज की सुख शांति, समृद्धि और सदभावना में बढ़ो[illegible] होती है। व्यक्तियों के चरित्र ऊंचे उठते हैं [illegible] लौकिक और पारलौकिक दोनों दृष्टियों [illegible] लाभ रहता है। व्यक्ति और समाज दोनों [illegible] जिसमें कल्याण है उस विचारधारा के [illegible] मनुष्यों को ढालना हर दृष्टि से कल्या[illegible] हम कल्याण पथ पर आरुढ एवं अग्रसर [illegible] में परमात्मा की और आत्मा की प्र[illegible] यही सबसे बड़ा लाभ है। इस [illegible] के लिए ही योग शास्त्रों में वि[illegible] अनुष्ठानों का आयोजन किया जा[illegible] बताये हुए सात तथ्यों के केन्द्र के आसपास सारी साधनाएं घूमती है।

(१) अस्तिक्य—ईश्वरीय विश्वास मन के ऊपर जमाने और दृढ करने के लिए भगवान की पूजा उपासन की अनेकों विधियों काम में लाई जाती हैं। धातु या पाषण की भगवत्प्रतिमाएं बनाकर उनकी पूजा, आराधना की जाती है। स्नान धूप, दीप, चंदन, आरती, भोग, शयन, आदि क्रियाओं के द्वारा मंदिरों में पूजन आराधन होते

रहते हैं। विशेष अवसरों पर फूल बँगले बनाये जाते हैं, उनकी विशेष सजावट होती हैं, मथुरा वृन्दावन में सावन के महीने में झूलों के उत्सव बड़े समारोह पूर्वक होते हैं, रथ यात्रा दीपदान, लीला अभिनय आदि के आयोजन होते हैं, रास-लीला एवं रामलीला के द्वारा भगवत् चरित्रों की स्मृति जागृत की जाती है। परमात्मा के प्रतिनिधियों के अवतारों और देवताओं के चित्र स्थापित किये किये जाते हैं। नवधा भक्ति के नौप्रकार श्रवण कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्म निवेदन है। इनको चरितार्थ करने के लिए भक्त लोग विविधि प्रकार के आयोजन एवं साधन करते हैं। संगीत नृत्य और गायन के साथ संकीर्तन होते हैं, उनकी विमोहित करने वाली ध्वनि लहरों में मनुष्य झूमने लगते हैं। ध्यान, जप, नाम स्मरण, में कितने ही साधक प्रवृत्त रहते हैं। इस प्रकार की साधनाऐं 'अस्तिक्य' की भावनाओं की परिपुष्ट करने के लिए हैं। इन सह...याओं के करने से लगातार ईश्वर विषय में ही ...जाता है और शरीर की क्रिया उसी कार्य ...े रहने से तदनुकूल वृत्तियों का निर्माण ...है।

(२) तत्व दर्शन—वास्तविकता को जानन ...ाप्त करना तथ्य को समझना, सद्ज्ञाना ...द्धि से सुसज्जित होना तत्व दर्शन का ...नके लिए सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय ...। विचार पूर्ण, निष्पक्ष, वैज्ञानिक आधार पर लिखे गये, पक्षपात रहित सद्ग्रन्थ इस दिशा में हमें बहुत आगे तक अग्रसर करते हैं। ऐसे ग्रन्थों का विचार और पाठ चलता है। अपने संबंध में एकान्त में अन्तर्मुखी होकर अपने आप विचार करना चिन्तन कहलाता है। मनन और निदध्यासन से प्रज्ञाचक्षु खुलते हैं। सत्संग, विचार विनिमय' शंकासमाधान प्रवचन आदि के आधार पर ऋतम्भरा बुद्धि को, सत्यासत्य निरूपिणी विवेक शक्ति की जागृत किया जाता है।

निष्पक्ष, शुद्ध, दृष्टि प्राप्त करने के लिए द्वन्दों से ऊपर उठना पड़ना है। राग-द्वेष, हर्ष शोक, लोभ-घृणा, मद-मत्सर, मान-मोह, क्रोध-दीनता आदि द्वन्दों के आवेश से मस्तिष्क में उत्तेजनाऐं उत्पन्न होती हैं। उन उत्तेजनाओं से तत्संबंधित ज्ञानतन्तु और परमाणुओं में विशेष रूप से हलचल पैदा होजाती है, वह उफान अपने निकट वर्ती अन्य अवयवों की शक्ति खींच लेता है और उन्हें निकम्मा बना देता है। फल स्वरूप ऐसे व्यक्तियों का मान-सिक विकाश, लंगडा तथा अधूरा होता है। वे किसी बात की निष्पक्ष रूप से नहीं सोच सकते। अपनी धुनि, सनक, मान्यता, हठधर्मी के आधार पर वे एकांगी सोचते हैं. जिससे तत्व निरूपण नहीं होता। जैसे विश्वास बीज जमे होते हैं उसी रंग का चश्मा पहन कर मस्तिष्क सोच विचार करता है और उसी आधार पर निर्णय करता है। ऐसी स्थिति में मनुष्य भ्रम, अज्ञान, अन्धकार, दुराग्रह एवं सनक का शिकार रहता है उसे सत्य का दर्शन नहीं होता। सत्य के दर्शन के लिए निष्पक्ष विशुद्ध, विवेक युक्त दृष्टिकोण की आवश्यकता है। और वह तब प्राप्त होना है जब मनुष्य आवेश रहित हो, निराकुल हो। निराकुलता की रक्षा के लिए वैराग्य की, अनाशक्ति की, स्थिति प्रज्ञता की आवश्यकता है। उस स्थिति के व्यक्ति को ही भगवान सत्य नारायण के दर्शन होते हैं। गीता का कर्मयोग इसी स्थिति को प्राप्त कराने की साधना है।

(१) आत्म निष्ठा—अपने आपको शुद्ध बुद्ध, चेतन्य, सत चित् आनन्द स्वरूप अनुभव करने के लिये कितनी ही साधनाएं हैं। व्रत, तीर्थ यात्रा, देवदर्शन, हवन अनुष्ठान, आदि धार्मिक कर्मकाण्डों का विधान जिन शास्त्रों में हैं उनमें इनके बड़े बड़े लम्बे चौड़े महात्मय भी लिखे गये हैं। बताया गया है कि इस कर्मकाण्ड को करने से इतने जन्म के पाप नाश होजाते हैं, मनुष्य निष्पाप हो जाता है। बहुत बडा पुण्य फल प्राप्त होता है, भगवान प्रसन्न होते हैं, स्वर्ग मिलता है तथा लौकिक अनेक आनन्दों की उप-लब्धि होती है। इस महात्म्य से प्रेरित होकर

लोग धार्मिक-कर्म काण्ड करते हैं। जिससे कई लाभ होते हैं, शारीरिक स्वस्थता, वातावरण की शुद्धि, धर्म भावनाओं सद्भावनाओं की वृद्धि इस निमित्त से स्वजनों का समियतन दान, आदि कितने ही लाभ उनसे होते हैं। सबसे बडा लाभ है कि उस कर्म काण्ड को करने के पश्चात् शास्त्रोक्त महात्मों के आधार पर वह कर्ता अपने आपको निष्पाप, पुण्यात्मा तथा धर्मवान् मानता है। पिछले पाप नाश हो जाने की उसकी मान्यता दृढ होती है। वह मानवता उसे आत्मिक महानता की ओर अग्रसर करती है। जो अपने को जैसा मान लेता है, उसके अनुसार कार्य भी करना है। इस प्रकार धार्मिक कर्मकाण्डों से आत्मवान् बनने में बडी सहायता मिलती है।

आत्मज्योति का ध्यान, सांस के आवागमन के साथ 'सो ऽहम् मंत्र' का जप और उस भावना का चिन्तन करने का प्रधान लाभ यही है कि अपनी आत्मा की महानता प्रतिभाषित होती है, पराधीनता छोड कर मनुष्य आत्म निर्भर बनता है, आत्म सम्मान, आत्म विश्वास, एवं आत्म गौरवता को अनुभव करना है। वेदान्त विज्ञान की समस्त साधनाएें, सो ऽ हम् तत्वमसि, सर्व शिवल्विद ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म के सिद्धान्त पर टिकी हुई हैं। आत्म में ही परमात्मा का दर्शन करना, हृदय को परमात्मा की क्रीडा भूमि शरीर को आत्मा का मंदरि अपने को राजाओं के राजा परमात्मा को राजकुमार अनुभव करना आत्मनिष्ठा को बढाने वाले विश्वास हैं। तपश्चर्या की साधनाओं द्वारा मनुष्य आत्मनिष्ठा की ओर बढता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनेकों प्रकार की साधनाएें करते हुए अनेक साधक देखे जाते हैं।

(४) शक्ति साधना—संसार में सुखपूर्वक रहने के लिऐ शक्ति की अनिवार्य आवश्यकता है। स्वर्ग, मुक्ति, आत्म साक्षात्कार, ईश्वर प्राप्ति आदि आध्यात्मिक संपदाएें भी पुरुषार्थी, शक्ति सम्पन्न साधकों को ही मिलती हैं। अपना आत्मिक और भौतिक अस्तित्व कायम रखने, अपने अधिकारों की रक्षा करने तथा आवश्यक वस्तुएें प्राप्त करने के लिए शक्ति की अनिवार्य आवश्यकता है। साधक शक्ति की उपासना करते हैं और उसे शिव का अभिन्न अंग मानते हैं। दुर्गा, राधा, सीता लक्ष्मी, सरस्वती पारवती आदि रूपों में साधक भगवती शक्ति की शरण में जाता है। शाक्त सम्प्रदाय एक आध्यात्मिक सम्प्रदाय है जो शक्ति को ही परमात्मा मान कर उसकी उपासना करता है। ईश्वर के साथ प्रकृति या माया का अनन्त संबंध है। इसी से परमात्मा को लक्ष्मी नारायण सीताराम, राधश्याम नामों से पुकारते हैं।

निरोगता, स्वस्थ्य की शक्ति प्राप्त करने के लिए नेति, धोती, वस्ति कपालभाति, वज्रोली, आसन प्राणायाम किये जाते हैं। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ शरीर मन रहता है उस सर्वमान्य सिद्धान्त के अनुसार योगी जन निरोगता और सरलता को सर्व प्रथम महत्व देते हैं और इसके लिए अनेक ऐसी साधनऐं हैं जिससे शरीर निरोग एवं सुदृढ रहे। साधनाएें दृष्टि गोचर होती हैं उनमें मन की स्वस्थता के लिए हैं । कर्मकाण्ड शरीर के साथ मन को भी [illegible] बनाता है।

योगी जन बुद्धि बल प्राप्त क[illegible] विद्या पढते और सत्संग करते हैं [illegible] को काटने के लिए फरसा, कल्हा[illegible] आदि धारण करते हैं। गो पा[illegible] प्राप्ति का रहस्य छिपा हुआ है। मंत्र, तंत्र, मैस्मरेजम, हिप्नोटिज्य, आदि आत्मिक पुरुषार्थ के आयुद्ध हैं। योग साधना एक प्रकार का अध्यात्मिक व्यायाम ही तो है जिसके द्वारा साधन शक्ति संपन्न होकर ऋद्धि सिद्धि प्राप्त करते हैं और अभीष्ट लक्ष तक पहुंचता है। साधनाऐं किसी न किसी शक्ति की प्राप्त करने के लिए ही की जाती है।

(५) संयम—मनुष्य का शरीर और मन अतु

लित शक्तियों का भंडार है इस भंडार का अधिकांश भाग अनुपयोगी एवं निरर्थक बातों में खर्च होता रहता है इस प्रवाह को उधर से रोक दिया जाय तो बचत का संचय होने लगता है। इस संचय को उपयोगी दिशा में लगा दिया जाय तो अनेक प्रकार की सफलताऐं सहज उपलब्ध हो जाती हैं और उन्नति के शिखर की ओर यात्रा बडी तीव्र गति से बढती चली जाती है।

इन्द्रियों का चटोरापन शक्तियों का सब से बडा अपव्यय करता है इन्द्रियों में स्वादेन्द्रिय और कामेन्द्रिय यह दो सब से प्रबल हैं। इनके द्वारा होने वाले शक्तियों के घोर अपव्यय को रोकने लिए ब्रह्मचर्य पालन की साधना की जाती है। अस्वाद व्रत लेकर चटोरेपन पर काबू करते हैं। मौन व्रत से वाचलता असत्य भाषण निरर्थक भाषण पर संयम करते हैं। समय [illegible] पर अन्य प्रतिबंध अपने ऊपर लगाकर [illegible] कष्ट सहिष्णुता का अभ्यास किया [illegible] है। सर्दी, गर्मी, नींद भूख, प्यास आदि [illegible] शक्ति प्राप्त करने के लिए शीत स्नान [illegible]ना, रात्री जागरण निराहर, निर्जल [illegible]वास किये जाते हैं। शय्या त्याग कर [illegible]यन करने से भी कष्ट सहिष्णुता [illegible]ता है।

[illegible]ल है। वह क्षणभर में यहां से [illegible] उसकी दौड पर नियंत्रण करने [illegible] कई प्रकार की साधनाऐं की जाती हैं। मंत्रों का जप, इष्ट देव का ध्यान, कानों में रुई या उंगली लगा कर अनहद नाद का श्रवण, किसी वस्तु पर दृष्टि जमाकर देखने का त्राटक, प्रत्याहार धारण, ध्यान, समाधि, शिथिली करण मुद्रा, खेचरी मुद्रा, षट्चक्र भेदन, सहस्त्रार भेदन आदि कितने ही मनको एकाग्र करने के साधन हैं। इन साधनों से एकाग्रता मिलती है और फिर एकाग्रता को जिस मार्ग पर भी लगा दिया जाय उसी दिशा में आश्चर्य जनक सफलता उपलब्ध होती है। विचारों का संयम, मन को विचार रहित, निर्विकल्प करके किया जाता है। विचार शून्यता की स्थिति में चित्त को बडा हलकापन अनुभव होता है।

(६) आत्म विचार—अपने 'अहम्' का दायरा संकीर्ण, संकुचित न रखकर बहुत में, सब में, अपने को घुला देना आत्मविस्तार कहा जाता है। सब प्राणियों को अपने में और अपने को सब प्राणियों को देखने की साधना आत्म विस्तार के लिए की जाती है। अद्वैत भाव यही है। अपने को अलग सत्ता न मानकर समाज का एक अङ्ग मात्र मानना समाज के हित अनहित में अपना अनहित देखना, विश्वात्मा में परमात्मा में अपने को घुला देना, यही आत्म विस्तार का दृष्टि कोण है।

ऐसे व्यक्ति अपने कार्मों को लोक सेवा के साथ जोड देते हैं, उनके हर एक काम में लोक कल्याण की प्राथमिकता रहती है। शरीर यात्रा के लिए वे जीविका उपार्जन करते हैं पर उसमें इस बात का पूरा ध्यान रखते हैं कि समाज का रत्ती भर भी अहित करके वह जीविका न कमाई गई हो। उनकी विचार प्रणाली और कार्यप्रणाली में लोक हित को सर्वोपरि स्थान मिलता है। अपनी शारीरिक मानसिक, बौद्धिक, आर्थिक आत्मिक शक्तियों का अधिकाधिक भाग वे लोक कल्याण में लगाते हैं। "वसुधैव कुटुम्बकम्" उनकी मान्यता होती है। सबको वे अपना कुटुम्बी मानकर उनसे प्रेम करते हैं, लोगों के हित के लिए, सुख के लिए, सुधार के लिए, कल्याण के लिए उन्हें सदा इच्छा बनी रहती है। दूसरों के लाभ में वे अपना लाभ और दूसरों की हानि में अपनी हानि देखते हैं।

चरक, सुश्रुत वागभट्ट, अश्विनीकुमार, आदि योगी जीवन भर चिकित्सा शास्त्र की शोध में लगे रहे, नागार्जुन ने रसायन क्रिया की शोध की, आर्यभट्ट, आदि ने खगोल विद्या की शोध की, पाणिनी ने व्याकरण रचा, व्यास जी ने पुराण बनाये, नारदजी संगीत के, द्रोणाचार्य, विश्वामित्र परशुराम आदि शास्त्र विद्या के आचार्य थे,

वात्सायव ने काम शास्त्र शोध की । इसी प्रकार अनेकों योगीजन लोककल्याण के लिए निरन्तर लगे रहते थे जो वैज्ञानिक अन्वेषणों द्वारा तथा अनेक प्रकार से अन्य कार्यों द्वारा जनता जनार्दन के लिए उपयोगी कार्य किया करते थे । नालिन्दा, तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालय उनके द्वारा चलाये जाते थे जिनमें देश देशान्तरों के छात्र विविधि प्रकार की शिक्षाऐं प्राप्त करने के लिए आया करते थे । इस प्रकार की लोक सेवा को कितने ही योगियों ने अपनी साधना बना लिया था । दधीचि ऋषि ने तो लोक कल्याण के लिए अपनी हड्डियां तक दे दीं ।

दान देना, नित्य देना, भारतीय संस्कृति की विशेषता है । इस देश में एक से एक बडे दानी हुए हैं । दान का आधार त्याग, परोपकार, सेवा, लोक कल्याण है । यह आत्म विस्तार ही है । इस साधना में अगणित साधकों को लगे हुए हम देखते हैं ।

(७) **ब्रह्म परायणता:**—आत्मा का प्रधान गुण सत् है । सतोगुण ब्रह्म का ही प्रतिविम्व है । दया, करुणा, वात्सल्य स्नेह सहृदयता, आत्मीयता, उदारता, सेवा सहायता आदि सतोगुणी स्वभाव ब्राह्मी स्थिति में जाकर बनते हैं । मूढता, एवं अहंकार के तम रज से ऊपर उठकर प्रेम के, भक्ति क्षेत्र में जब मनुष्य प्रवेश करता है तो उसे ब्रह्म का साक्षात्कार होने लगता है । आत्मा की वाणी सुनना और उस ईश्वरीय आज्ञा के अनुसार अपने विचार और कार्यों को बना लेना, सच्चा ईश्वर आराधन है । ऐसे सच्चे भक्तों को अन्तःकरण में बैठा हुआ परमात्मा अपनी शरण में ले लेता है और उन पर अपार अध्यात्मिक आनन्द की वर्षा करता है । यह परस्पर सन्तोष का प्रत्यक्ष आदान प्रदान ही ब्रह्म परायणता है । जीव आत्मा को संतुष्ट करता है, आत्माजीव को संतुष्ट करती है । यहीं आत्मा और परमात्मा का मिलन होजाता है ।

गीता में भगवान ने अर्जुन को अपना विराट् रूप दिखाते हुए बताया है कि यह समस्त विश्व मेरा ही रूप है । जो व्यक्ति उस विराट् रूप दर्शन की भावना को अपनालेता है वह उसी लाभ को प्राप्त करता है जो भगवान द्वारा विराट् रूप दिखाये जाने पर अर्जुन को प्राप्त हुआ था । यह विश्व भगवान का रूप है, इसलिए भगवान की जिस भाव से पूजा की जानी चाहिए उसी भाव का व्यवहार संसार के प्राणियों के साथ हमारा होना चाहिए । सर्वश्रेष्ठ चित्रों को मात कर देने वाला संसार का सौन्दर्य सच्चे भक्त को हर घडी प्रसन्नता प्रदान करता है । अपने चारों ओर भगवान को फैला हुआ सौन्दर्य देखकर वह परम सन्तोष, आनन्द तथा प्रसन्नता का अनुभव करता रहता है । यही परमानन्द की प्राप्ति है । इस परमानन्द को अनेकों साधक अनेक साधनाओं द्वारा प्राप्त करते हैं ।

विभिन्न सम्प्रदायों में असंख्य प्रकार की अगणित साधनाऐं हैं । उन समस्त साधनाओं का उद्देश्य मनुष्य की अन्तभूमि में उपरोक्त सात संस्कार जमाना है । जब यह संस्कार जम जाते हैं तब इन साधनाओं की आवश्यकता पूर्ण हो जाती है ।

जससे जनता का चित्त शुद्ध होता है
साहित्य है । पोथी का कुआं डुबाता
और पोथी की नैया तारती भी नहीं है
अक्षर पोथी में मिलते हैं किन्तु उनका...
में खोजना है । मन भर चर्चा की
आचरण श्रेष्ठ है । ज्ञानवंत प्राणी
जीवन में उतारता है ।

—संतवर

× × ×

धर्म-ग्रन्थों का कोई कितना ही पाठ करे, यदि वह प्रमादवश तदनुसार आचरण नहीं करता तो वह दूसरे की गौवें गिनने वाले ग्वाल की तरह ही है । और चाहे थोडा ही पाठ करे, लेकिन यदि राग, द्वेष तथा मोह से रहित हो धर्मानुसार आचरण करता है तो ऐसा बुद्धिमान् अनासक्त, ही श्रमणत्व का भागी होता है ।

× × —भगवान् बुद्ध

सम्पन्नता के चार आधार।

बलों का उपार्जन ही सिद्धि प्राप्ति का राज मार्ग है। जो बलवान है वही सिद्ध है। जिसमें आत्म बल है उसे ही तो आध्यात्मिक सिद्धियां प्राप्त होती है। बलवान की सहायता लेकर निर्बल लोग सुख प्राप्ति की आशा लगाते हैं। जो बलवान हैं उन्हें इस प्रकार किसी का पराश्रित नहीं रहना पड़ता। सिद्धि की सहायता के लेने के लिए दूसरे सिद्धों को तलाश करने की अपेक्षा यह अच्छा है कि स्वयं सिद्ध बने, स्वयं सिद्धियां प्राप्त करें। जिससे दूसरों का सहारा तकने की बजाय अपने ही बाहुबल से अपना कार्य चल सके।

अमृत, पारस, आकाश में उड़ना, अदृश्य होना, शरीर बदल कर पशुपक्षी बन जाना, भूत भविष्यत जान लेना, जैसी संदिग्ध एवं अनिश्चित सिद्धियों बहुत ऊंची श्रेणी की चीजों को प्राप्त करने की सद्य अभिलाषा न करनी चाहिए। सीडी सीडी चढ़ने से पर्वत पर चढा जासकता है। कदम २ चलकर लम्बी मंजिल पार करली जाती है। उन सिद्धियों को प्राप्त करना चाहिए जो कि, सीधे साधे तरीकों से प्राप्त की जा सकें जिनके द्वारा इसी जीवन में स्वर्ग उपलब्ध किया जासकता है।

सम्पन्न बनने के लिए हमें दूसरों पर आश्रित नहीं रहना चाहिए। दूसरों की दी हुई सहायता एक दो प्रयोजनों को पूरा कर सकती है। बार बार एवं हर काम के लिए दूसरों का आश्रय कहां तक लिया जासकता है? और दूसरे भी कहां तक उसकी मदद कर सकते हैं? ओस चाटने से काम नहीं चल सकता, जलाशय की व्यवस्था करके ही नित्य बार बार लगने वाली प्यास के कष्ट से बचा जासकता है। अपने बाहुबल से उपार्जित शक्तियां ही स्थायी रूप से क्लेश निवारिणी एवं सुख दायिनी हो सकती हैं। इस बलवान बनने, शक्ति संचय करने की ओर हमारी प्रवृत्तियों को अग्रसर होना चाहिए। अब नीचे की पंक्तियों में बलोपार्जन के सम्बन्ध में कुछ प्रकाश डाला जाता है।

शारीरिक बल—शारीरिक व्यथाओं से छुटकारा पाने और स्वस्थता का आनन्द भोगने के लिए हमें शारीरिक बल एकत्रित करना चाहिए। इसके लिए (१) आहार की सावधानी (२) रहन सहन में विवेक शीलता (३) शक्तियों का उचित मात्रा में खर्च (४) मानसिक सन्तुलन (५) विकृति का परिमार्जन इन पांच उपायों की आवश्यकता है। इन पांच उपायों से बिगडा स्वास्थ्य सुधर सकता है और सुधरा स्वास्थ्य चिरस्थायी रह सकता है।

आहार की सावधानी में, खुलकर भूख लगने पर ही भोजन करना, भूख से कम खाना, भोजन को भगवान का प्रसाद समझ कर अमृत भावना के साथ प्रसन्नता पूर्वक खाना, भली प्रकार चबाकर खाना, सात्विक आहार ग्रहण करना यह पांच नियम ध्यान रखने योग्य हैं। क्या वस्तु खानी चाहिए क्या न खानी चाहिये? इस सम्बन्ध में बड़े बड़े ग्रन्थ मौजूद हैं पर उनका सार यह है ताजे, सजीव, पौष्टिक शुद्ध रुचिर, एवं धर्मोपार्जित पदार्थ खाने चाहिए। घी तेल मसाले अग्नि आदि द्वारा जो चीजें बहुत तली, जलाई एवं भूनी जाती हैं वे हानिकर होजाती है। ताजे फल, हरे शाक, मेवे, दूध, दही, दलिया, चावल, दाल, रोटी जैसी सात्विक चीजें ठीक हैं। एक साथ बहुत प्रकार के पदार्थ न खाये जाय, थाली में बहुत तरह की चीजों की भरमार न होना चाहिए। अन्याय से लिया हुआ, अशुद्ध घृणित व्यक्तियों द्वारा बनाया हुआ भोजन त्याज्य है। सूत्र रूप में बताई हुई इन थोडी बातों को पूरी सावधानी के साथ बरता जाय तो वह स्वास्थ्य की समस्या को हल करने में बडा सहायक होता है। तन्दुरुस्ती का अधिक आधार भोजन पर निर्भर है पर हम अपनी असावधानी से उसे नष्ट करते रहते हैं।

समाज बल—दूसरे व्यक्तियों के असहयोग विरोध एवं आक्रमण से होने वाले कष्ट तथा सहयोग, सम्मिलन एवं सहायता द्वारा प्राप्त होने वाले लाभ, यह हमारी सामाजिक स्थिति के ऊपर निर्भर हैं। मनुष्य एकाकी नहीं है वरन् वह सामाजिक प्राणी है। दूसरों द्वारा अपने साथ जो व्यवहार किया जाता है, उसकी प्रतिक्रिया मन पर हुए बिना नहीं रहती। प्रशंसा, समर्थन एवं सहयोग से कलेजा ढाल होजाता है, छोटे व्यक्ति भी आगे बढ जाते है, अल्प साधन होते हुए भी उन्हें सुख सन्तोष की अनुभूति होती है।

सामाजिक बल संचय करने के लिए (१) मधुर भाषण (२) सेवाभाव (३) उच्च चरित्र (४) पराक्रम (५) व्यवहार कुशलता इन पांच चीजों की आवश्यकता होती है। विनय नम्रता शिष्टाचार, मधुर भाषण, मधुर व्यवहार से पराये अपने होजाते हैं। जहां मिठास होती है वहां चीटियां और मक्खियां अपने आप जमा हो जाते हैं जिसे मधुर व्यवहार करना मीठा बोलना आता है उसे दूसरों की सद्भावनाएँ अनायास ही प्राप्त होती हैं। जो दूसरों की सेवा करता है, उसे अपने लिए सेवा भाव प्रस्तुत करने वालों की कमी नहीं रहती। उपकार, भलाई और अहसान करके दूसरों का हृदय जीता जासकता है। जिसका हृदय जीत लिया गया है वही सच्चा अनुचर है। उच्च चरित्र, सदाचार, व्यक्तिगत जीवन की पवित्रता, निस्वार्थता, न्याय परायणता, एवं खरा व्यक्तित्व मनुष्य की ऐसी विभूतियां हैं जिनके सामने विरोधियों के सब हथियार झूठे पड जाते हैं। शत्रुओं को भी उनका मान करना पडता है, उनके वचनों में ऐसा बल होता है जिसे मानने के लिए दुराग्रहियों को भी विवश होना पडता है। पराक्रमी, पुरुषार्थी, चैतन्य, उद्योगी, क्रियाशील स्वभाव के मनुष्य पग पग पर सफलताएं प्राप्त करते हैं। जिस काम को ऐसे लोग हाथ में लेते हैं, अपनी लगन के कारण तुर्त फुर्त पूरा कर डालते हैं, उनके इस गुण पर मुग्ध होकर सब लोग उनसे मित्रता रखना चाहते हैं उनका सहारा, अपनी कठिनाइयों का हल करने के लिए तकते हैं। यह क्षमता शत्रुओं को डराने और मित्रों को आकर्षित करने में बडी कारगर होती है। व्यवहार कुशलता के द्वारा रूठे को मनाना, भ्रम में पड़े हुए को समझाना, भटके हुए को राह पर लाना आसान है। दूसरों की मनोवृत्तियों को परख कर जो लोग उचित अवसर पर उचित व्यवहार करते हैं वे बड़े बड़े संकटों को टाल देते हैं और बड़े बड़े लाभों को प्राप्त कर लेते हैं, इन पांच उपायों के द्वारा मनुष्य को सामाजिक बल प्राप्त होता है। सामाजिक, कुरीतियां और राजनैतिक दासता भी इन्हीं उपायों से दूर की जाती है।

अर्थ बल—आज तो अर्थ युग है, पैसे की महिमा इतना बढ गई है कि हर बात में पैसे की ही प्रधानता है। पैसे से दुष्प्राप्य वस्तुएं प्राप्त होती हैं और बडी बडी मुश्किलें आसान होजाती हैं। पैसे की आवश्यकता सब कोई अनुभव करता है, [illegible] प्राप्त वही कर पाते हैं जिनमें उसे प्राप्त [illegible] क्षमता है। अर्थोपार्जन पांच बातों पर [illegible] (१) उत्पादकश्रम (२) व्यवस्था कौश[illegible] मितव्ययता (४) जागरूकता (५) विश्व[illegible] व्यापार, नौकरी, कृषि, शिल्प आदि शा[illegible] चिकित्सा वकालत, उपदेश आदि मा[illegible] दक श्रमों के बदले में धन मिलत[illegible] और मानसिक श्रम का धन[illegible] और बुद्धि को इस प्रकार से [illegible] आवश्यकता है कि साधारण श्रम से उचित मात्रा में धन कमाया जासके। बिना इस प्रकार की योग्यता केवल बोझा ढोने के शारीरिक श्रम से तो मनुष्य गधे और बैल की बराबर भी नहीं कमा सकता है। व्यवस्था करने की कुशलता, मैनेजरी की योग्यता बहुत बड़ी योग्यता है। कम श्रम में अधिक काम होना, शक्ति का एक कण भी अपव्यय न होने देना, आवश्यकताओं को अविलम्ब पूरा कर देना, पूंजी श्रम, साधन और निकासी का ठीक समन्वय रखना व्यवस्थापक की कुशलता है। इन चारों में से एक

भी कम पड जाने पर काम रुक जाता है इसलिए चतुर मैनेजर हर काम में इन चारों को जुटाने में सफलता प्राप्त किये रहता है विज्ञापन और सजधाट भी व्यवस्था का एक अंग है। मितव्ययता कम खर्ची केवल आवश्यक वस्तुओं के लिए ही पैसा खर्च करना, धनी बनने का प्रमुख नियम है। फिजूल खर्ची से कुबेर के भी खजाने खाली हो सकते हैं। जागरूकता, सावधानी, सतर्कता रखे बिना कोई व्यक्ति धनी नहीं होसकता। बदलती हुई परिस्थितियों के चढाव उतार को वारीकी और गंभीरता से देख कर जो अपनी कार्य पद्धति में समयानुसार हेर फेर करता है वही लाभ उठाता है। निकट भविष्य के अच्छे और बुरे अवसरों की जो ठीक कल्पना कर लेता है और पहले से ही उनके लिए तैयारी करता है वह जीतता है। सजग आदमी आमतौर से धोखा नहीं खाते और न मौका चूकते हैं। विश्वास व्यापार की जान है। जो व्यापारी अपने सम्बन्ध में और अपने कारोबार के सम्बन्ध में विश्वास, यश और प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेते हैं उसके ग्राहक बढते रहते हैं, साथ ही लाभ भी बढ़ता रहता है। अर्थ उपार्जन में यह पांच बातें प्रमुख हैं।

बुद्धिबल—बुद्धिबल उपरोक्त तीनों बलों से अधिक महत्वपूर्ण होने के कारण सर्व प्रधान है। वे तीनों भी बुद्धिबल पर निर्भर करते हैं। यदि बुद्धि बल न हो तो उन तीनों का उपार्जन कठिन है। किसी प्रकार वे प्राप्त भी हो जावें तो उनका चिरस्थायी रहना कठिन है। इसलिए अपने आपको सुशिक्षित बुद्धिमान और क्रिया कुशल बनाने का सतत् प्रयत्न करना चाहिए। बुद्धिबल के लिए पांच बातें आवश्यक है (१) ज्ञान प्राप्ति की तीव्र इच्छा (२) तर्क का आश्रय (३) अध्ययन (४) संगति (५) सूक्ष्म निरीक्षण और मनन।

जिसे जानने की उत्कट अभिलाषा है वे एक दिन अवश्य जानकार बनकर रहेगा उसकी यह इच्छा ही ऐसे साधन जुटा देगी जिससे अभीष्ट ज्ञान को प्राप्त करना सुगम होजाय। हट, दुराग्रह, भ्रम और अन्ध विश्वास को छोडकर जो तर्क और प्रमाणों के आधार पर सत् असत् का निर्णय करता है वह वस्तु स्थिति तक पहुँच जाता है, उनकी बुद्धिमता में बढोतरी होती है। इच्छित विषय की पुस्तकें तथा पत्र पत्रिकाऐं पढने से तथा उस विषय के जानकारों की समीपता में रहने से, उस प्रकार के कार्यों में क्रियात्मक हाथ बटाने से ठोस ज्ञान मिलता है। सूक्ष्म दृष्टि से परिस्थितियों को देखने, उनकी तह तक पहुँचने की कोशिस करते रहने से नई नई बातें, नये नये तथ्य सूझ पडते हैं। जो खोज में रहता है वह अभीष्ट स्थान तक पहुँच जाता है।

'मैं सब जानता हूं, मेरी अकल सबसे आगे है, मेरी ही बात सबसे ऊपर है, मैं ही सही हूं और सब गलत हैं," इस प्रकार का दुराग्रह और अहंकार रखने वालों की बुद्धि दिन दिन घटती है। यह मिथ्या अहंकार बुद्धि विकाश के मार्ग को बन्द कर देता है इसलिए जिन्हें बुद्धि बल के सम्पादन की इच्छा है उन्हें इस प्रकार के अहंकार से पूर्ण तया बचा रहना चाहिए। विभिन्न विषयों की गहरी जानकारी प्राप्त करने के लिए विद्यार्थी जैसी अभिरुचि रखनी चाहिए और तर्क द्वारा परीक्षा करके हर बात का खरा खोटापन परखते चलना चाहिए। अधिक जानकारी, अधिक वास्तविक जानकारी, अधिक उपयोगी जानकारी इन. तीन आधारों पर जो अपने ज्ञान को बढाता रहता है वह एक दिन बुद्धिबल सम्पन्न हो जाता है।

जिस प्रकार चार पाये लगाने से एक पूर्ण पलंग बनता है, उसी प्रकार चारों प्रकार के बलों से मिल कर एक पूर्ण बल बनता है। हमें इस सर्वाङ्ग पूर्ण बल को प्राप्त करने और उसे बढाने के लिए निरन्तर प्रयत्न शील रहना चाहिए यह बल जैसे २ बढ़ेगा वैसे ही वैसे जीवन अधिक साधन सम्पन्न बनता जायगा और जिन वस्तुओं के लिए लोग तरसते हैं वे अनायास ही प्राप्त होने लगेंगी। सिद्धों की सहायता इस लिए ढूंढनी पडती है कि

शक्ति से सिद्धि।

पिछले पृष्ठों पर छपे हुए लेखों को पढ़कर पाठक यह जान चुके होंगे कि अलौकिक सिद्धियां लोक हित की दृष्टि से न तो आवश्यक हैं न उपयोगी। जिनकी आध्यात्मिक स्थिति बहुत ऊंचे दर्जे की नहीं है वे न तो उन्हें आसानी से पा सकते और यदि किसी प्रकार प्राप्त भी करलें तो उनसे लाभ की अपेक्षा हानि ही प्राप्त कर सकते हैं। जिन जीवन मुक्त पुरुषों को वे सिद्धियां प्राप्त होती हैं वे उनका उपयोग कर्म व्यवस्था में गड़बड़ी पैदा करने के लिए नहीं करते।

इतना जान लेने के बाद अब हमें यह जानना है कि सिद्धि नामकी कोई वस्तु है या नहीं? यदि है तो उसकी सीमा और मर्यादा क्या है? और इन सिद्धियों के प्राप्त होने से क्या लाभ होसकता है? इस लेखमें इन्हीं प्रश्नों पर विचार करेंगे।

हम पहले ही बता चुके हैं कि परमात्मा के भण्डार में किसी वस्तु की कमी नहीं है। उसकी झोली में एक से एक अनोखे रत्न छिपे पड़े हैं। जो आवश्यकता और योग्यता एवं परिश्रम के आधार पर मनुष्य को प्राप्त होते हैं। आत्मा आखिर परमात्मा का ही एक अंश है। परमात्मा की शक्तियां सूक्ष्म रूप से उसमें भी मौजूद हैं। सरोवर के जल में जो तत्व है वे ही पानी की एक बूंद में भी मौजूद हैं, जो गुण प्रचंड अग्नि ज्वाल का है वही चिनगारी का भी है। चिनगारी एवं बूंद छोटी हैं सही, अल्पशक्ति वाली हैं सही, पर उनमें वह क्षमता मौजूद है कि अवसर मिलने पर अपने को महान रूप में प्रकट कर सकती हैं। अग्नि के ऊपर जब राख पड़ी रहती है तो वह निष्प्रय होजाती है न तो बाहर से देखने में वह चमकती है और न छूने से जलाती है, इसका कारण वह राख का पर्दा हट जाय, राख को झाड़ दिया जाय तो प्रज्वलित अंगार दृष्टि गोचर होने लगेगा। वह चमकेगा भी औ जलावेगा भी। यही स्थिति आत्मा की है, कषाय कल्मष, पाप, ताप एवं विषय विकारों की राखने उसके तेज को ढक दिया है। इसीसे आत्मा, निर्बल, अशक्त, निस्तेज, एवं दीन हीन दिखाई पड़ता है। जब इस मायामय आवरण को वह झाड़ देता है तो उसका वास्तविक रूप चमकने लगता है। तब उसमें अनेकों सिद्धियों का आभास दिखाई देने लगता है।

सबलता स्वयं एक चमत्कारी सिद्धि है। जि[illegible] शरीर सबल, हृष्ट, पुष्ट स्वस्थ एवं निरोग[illegible] उसके शरीर में हम शारीरिक चमत्कारों के दर्शन कर सकते हैं। भरा हुआ चेहरा [illegible] गाल, चमकते हुए नेत्र, खिला हुआ मुख [illegible]न हुए ओठ अपनी आकर्षक छटा दिख[illegible] कृति पर कमल सा खिला होता है [illegible] झरते हैं तेज, उत्साह, प्रसन्नता, [illegible] उसमें से छलकी पड़ती है। शिला[illegible] हथौड़ों से गढ़ा हुआ सा शरीर, उमंग और प्रौढ़ता से भरा रहता है। उसे जीवन का सच्चा आनन्द मिलता है। इन्द्रियां सबल होने के कारण भोगों का आनन्द भी उसे ही मिलता है। गहरी नींद पत्थर को पचा देने वाली भूख, दाम्पत्ति संबंधों में तृप्ति दायक पौरुष, तीक्ष्ण दृष्टि जिसे प्राप्त है वह सच-मुच भाग्य शाली है। उसे शारीरिक 'सिद्धि' कह सकते हैं। अकेला दस से भिड़कर उन्हें पछाड़ देता है और अपनी विजय का डंका बजाता है यह उसकी सिद्धि है। साधारण कोटि के लोग उसके

जीवन की आवश्यक वस्तुएं, आवश्यक सुविधाएं अपने बलबूते पर नहीं मिल पाते। जब शक्ति सम्पन्नता अपने में ही स्थापित होजावेगी तो पर-मुखापेक्षी एवं पराश्रित न रहना पड़ेगा सिद्धों की सहायता से कुछ प्राप्त करने की अपेक्षा, सबलता द्वारा बहुत प्राप्त करने का मार्ग उत्तम है। हमें सबल बनने के मार्ग को ही महत्व देना चाहिए और योग्यताऐं एकत्रित करने में जुट जाना चाहिए, यही सुखदायक सिद्धियां प्राप्त करने का ठीक रास्ता है।

———

व्यक्तित्व को देखकर ही सहम जाते हैं और कितनी ही मुश्किलें उसकी उपस्थिति मात्र से हल होजाती हैं। दीर्घ जीवन, निरोगता, उपार्जन शक्ति,प्रसन्नता, आत्म विश्वास यदि शारीरिक सबलता की सिद्धियां हैं।

आर्थिक सबलता की सिद्धियां आज सर्वत्र सर्वविदित हैं। सब जगह पैसे का बोल बाला है। पैसे के द्वारा मन चाही चीजें खरीदी जा सकती हैं। महल, मकान, मोटर, हाथी, जहाज, नौकर जेवर जवाहरात, ऐश आराम की एक से एक बढिया चीजें खरीदी जासकती हैं। ऊंचे से ऊंचे दिमागों को खरीदा जासकता है बड़े बड़े वकील वैरिस्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक, कलाकार, डाक्टर विद्वान, विचारक, लेखक, साहित्यक, धन के द्वारा अपनी मुट्ठी में होजाते हैं, उनके दिमागों से अपनी मन मर्जी का काम कराया जासकता है। आज तो यश, धर्म और स्वर्ग भी धन द्वारा खरीदे जाने की जनाऐं चल रही है। जन बल, असंख्य मनुष्यों सहयोग यहां तक कि प्राण देने वाले सैनिक मोल लिये जाते हैं खून खरीदा बेचा जाता [illegible]र्य, रूप और सतीत्व की खरीद फरोख्त संसार के बड़े बड़े सुख, आर्थिक सबलता किये जाते हैं। यह आर्थिक सबलता [illegible]।

[illegible] सबलता, अपने ढंग की अनौखी [illegible] अनुकूल, एवं सहायक लोगों का [illegible] बहुत ही ऊँचे दर्जे का सुख है। स्त्री, पुत्र, भाई बहिन, माता, पिता आदि घर के सब बाल वृद्ध एकमत,संतुष्ट, परस्पर मैत्री सहयोग एवं सद्‌भाव के साथ रहें तो वह घर ही स्वर्ग के समान आनन्द दायक बनजाते हैं। जिन स्त्री, पुरुषों में, पिता पुत्र में, भाई भाई में सच्चा प्रेम मौजूद है उनके लिए निर्धनता भी विपुल सम्पन्नता से अधिक सुखदायी है। जिसको समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त है, आदर है, पूछ है, जिसकी सलाह दस आदमी लेते हैं जिसकी आज्ञा में अनेकों चलते हैं उसे सुखी एवं संतुष्ट जीवन का अनुभव होता है।

जो समाज कुरीतियों, हानिकारक प्रतिबन्धों,फिजूल खर्चियों एवं अशुद्ध दृष्टि कोण से मुक्त हैं, उसमें रहते हुए पग पग पर उन्नति एवं सुविधा की व्यवस्था रहती है। इसी प्रकार राजनैतिक दासता से जो समाज मुक्त है, वह दिन दिन सुखी एवं समृद्ध होता जाता है। जो समाज बलवान है उसके सदस्यों को अनायास ही अनेकों सुख सुविधाऐं प्राप्त होजाती हैं। इंग्रेजों का समाज बलवान है, उस सबलता के कारण किन्हीं कमजोर और पिछड़े हुए अंग्रेजों को भी अनेकों ऐसी सुविधाऐं प्राप्त होती हैं जो अन्य समाज में जन्म लेने पर उन्हें नहीं हो सकती थी। हम देखते हैं कि अच्छे मित्रों की सहायता द्वारा, संगठन के बल से अनेकों ने आश्चर्य जनक सफलताऐं पाईं। यह सब जन सहयोग, सामाजिक सबलता का प्रताप है। सामाजिक बलिष्ठता होने से अनेकों प्रकार के आनन्द मिलते हैं उन्हें सामाजिक सबलता की सिद्धियां कहना चाहिए।

बौद्धिक सबलता के द्वारा अनेकों प्रकार की सम्पत्तियाँ मिलती हैं। विचारवान् बुद्धिवान् मनुष्य सदा ही सब कामों में अग्रिणी रहते हैं। बुद्धिबल से वे अनोखे मार्ग ढूंढ निकालते हैं। व्यापारी, शासक, न्यायाधीश, वकील, डाक्टर, दार्शनिक विचारक, लेखक, वैज्ञानिक अन्वेषक यह सब बुद्धि जीवी ही हैं, अपने बुद्धिबल से धन, यश, पद एवं परमार्थ सभी उपार्जन करते हैं और उस उपार्जन से आनन्द का आस्वादन करते हैं। बुद्धिमान मनुष्य मन चाही चीज बुद्धिबल के आधार पर प्राप्त करते हैं, धन की यश की, सुख की, प्रतिष्ठा की, इन्हें कोई कमी नहीं रहती। बुद्धिबल से वे घर बैठे बैठे ऐसे कार्य कर डालते हैं जिससे असंख्य जनता का भारी हित होसकता है। विवेक शक्ति से मनुष्य अपनी निजी उलझनों को सुलझा लेता है। जब कि मूर्ख मनुष्य विपुल वैभव के होते हुए भी दुख और चिन्ता के समुद्र में गोते लगाते रहते हैं, तब विवेक वान मनुष्य स्वल्प साधनों से भी अपने को सुखी, संतुष्ट और प्रसन्न

रखने की व्यवस्था कर लेता है। विवेक से, ज्ञान से सद्भाव से, स्वर्ग तथा मुक्ति जैसी दुर्लभ वस्तुऐं भी मनुष्य को प्राप्त होजाती हैं। ज्ञान से पवित्र हुआ आत्मा सद्गुणों का पुञ्ज बन जाता है, जिन गुणों के कारण मनुष्य, महात्मा, तपस्वी, महापुरुष, धर्मात्मा, परमार्थी, बनता है वे गुण बौद्धिक प्रेरणा से ही आता है। बुद्धि आत्मा को परमात्मा बना देती है। ज्ञान द्वारा विष को अमृत बना दिया जाता है। बुद्धि जीवी अपने बुद्धिवल से जिन महत्ताओं को प्राप्त करते हैं वह बौद्धिक सिद्धियों की ही महिमा तो है।

सबलता को अनेकों भागों में बांटा जासकता है। और उनके शक्ति खण्डों द्वारा प्राप्त होने वाले लौकिक और पारलौकिक सुखों का सविस्तार वर्णन किया जा सकता है। स्थान संकोच से उस विस्तार में न जाकर हमें पाठकों को यह बताना है कि बल ही सुखों का जनक है। बल और सुख आपस में एक दूसरे से पूर्ण तथा संबद्ध है। जिसमें जिस प्रकार का बल होगा वह उस प्रकार के सुखों को अनायास ही प्राप्त कर लेगा। जिसके पास शारीरिक बल है वह शारीरिक सुखों को, जिसके पास सामाजिक बल है वह सामाजिक सुखों को जिसके पास मानसिक बल है वह मानसिक सुखों को उपलब्ध करेगा जिसके पास तीनों प्रकार के बल हैं वह त्रिविधि सुखों का रसास्वादन करेगा। वह सब सुखी रहेगा। बलवान मनुष्य प्रत्यक्ष 'सिद्ध' है। बलिष्ठता का ही दूसरा नाम सिद्धि है।

आज अनेकों व्यक्ति जिन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सिद्धों की तलाश में फिरते हैं, यदि वे सिद्धों की बजाय बलों की तलाश में फिरें तो उनका अभीष्ट आसानी से पूरा होसकता है। हम देखते हैं कि साधारणतः लोग दड़ा, सट्टा, फीचर, तेजी मंदी, भाग्योदय आदि की बात मालूम करने के लिए वे पीर मुरीदों के पास फिरा करते हैं। इन बातों के पूछने का उनका अभिप्राय धनी बनना होता है, इस उपाय से वे धन प्राप्त करने की इच्छा करते हैं। पर हम देखते हैं कि इस दुनियां में असंख्यों धनवान भरे पड़े हैं। उन्होंने अपनी योग्यता द्वारा, धन उपार्जन के साधारण मार्ग पर चलकर विपुल सम्पत्तियां कमाई हैं। वे नित्य इतना धन कमाते हैं जितना कि पीर मुरीदों की कृपा से मिलने की कल्पना भी नहीं की जासकती, जब धनी बनने के राज मार्ग मौजूद हैं, व्यापारिक योग्यता द्वारा सीधा साधे तरीके से धन प्राप्त किया जासकता है तो एक अनिश्चत उलझन में क्यों पड़ा जाय? जब कूऐ से खींच कर जल प्राप्त किया जासकता है, प्यास बुझाई जासकती है तो आकाश से बादल बरसने पर जल पीने की अनिश्चित आशा में क्यों उलझा जाय?

बीमारी दूर करने के लिए झाड फूंक करने वाले सयाने दिवाने तलाश किये जाते हैं, संतान न होने, होकर, मरजाने आदि शारीरिक कष्टों के लिए सिद्धों की शरण जाते हैं। इन कष्टों को हम स्वास्थ्य के नियमों पर चलकर, उत्तम चिकित्सा द्वारा दूर कर सकते हैं। असंख्यों स्वस्थ्य एवं हट्टे कट्टे मनुष्य ऐसे मौजूद हैं जिनको शारीरिक व्यथा से ह[illegible] रहती है जब अगणित मनुष्य स्वस्थता के राज[illegible] पर चल कर शारीरिक सुख भोग रहे हैं [illegible] वैसा क्यों नहीं कर सकते? इसी प्रकार [illegible] अप्रिय परिस्थितियों को जीतने के लिए [illegible] मोहन, वशीकरण, शत्रु विजय, मुकदम[illegible] के लिए तंत्र मंत्र, अनुष्ठान आदि [illegible] हम देखते हैं कि कितने ही लोग [illegible] और योग्यता से इस प्रकार की परा[illegible] मुक्त रहते हैं। कोई कभी कोई झंझट आभी पड़ता है तो उसे अपनी प्रतिभा द्वारा सुलझा लेते हैं। वशीकरण के दस तावीज जिस काम को नहीं कर सकते उसे वे एक मुस्कान एक भेंट में पूरा कर लेते हैं। जब अनेकों अपनी प्रतिभा द्वारा सामाजिक कठिनाइयों से छुटकारा पाकर आनन्द लाभ कर रहे हैं तो हमें उस राजमार्ग को छोड़कर इधर उधर भटकने की क्या जरूरत है? यही बात मानसिक सुखों के बारे में हैं, अतुल संपदा से जो सुख मिलता है, उससे अधिक सुख निर्धनता की दशा

होते हुए भी "सन्तोष" द्वारा प्राप्त होसकता है। मायाग्रस्त, दिमागी उलझनों में उलझे हुए लोग निरर्थक बातों के लिए बड़े चिन्तित, उद्विग्न, व्याकुल और बेचैन फिरते हैं, पर जिनका दृष्टिकोण सुलझा हुआ है जो तत्वदर्शी और विज्ञानी है उन्हें बड़ी बड़ी बाधाऐं आने पर भी कुछ बेचैनी नहीं होती कायर लोग। अंधेरी कोठरी में चूहों की खड़बड़ सुनकर भय से सुन्न होजाते हैं, दूसरी ओर रण-स्थली में सनसनाती गोलियों के बीच, तलवारों की छाया में हँसने वाले, मस्त रहने वाले और गाढ निंद्रा लेने वाले वीर भी हैं। बुद्धि का अन्तर है। इसी बुद्धि भेद से मनुष्य मान अपमान, प्रतिष्ठा अप्रतिष्ठा, लघुता महत्ता, सुख दुख और भाव अभाव प्राप्त करते हैं। जिन भयों और चिन्ताओं से छूटने के लिए लोग सिद्धों की तलाश करते हैं उन्हें अनेकों ही व्यक्ति अपने विवेक बल से ही ठीक कर लेते हैं, क्या हम अपने बुद्धि बल को जाग्रत करके सुविधा पूर्वक अनेकों मानसिक क्लेशों से मुक्त नहीं हो सकते ? यदि होसकते हैं तो वह सर्व अनुमोदित मार्ग हमें ग्रहण क्यों नहीं करना चाहिए ?

बहुधा ऐसे लोग सिद्धियों की तलाश में फिरते हैं जो उन योग्यताओं सबलताओं और शक्तियों से रहित होते हैं जिनके द्वारा सम्पदाऐं प्राप्त हो सकती हैं। आलस्य, अनुत्साह, प्रयत्न में अरुचि, भ्रम, अन्धविश्वास आदि के कारण वे "श्रम द्वारा प्राप्ति" के वीरोचित मार्ग पर चल कर अभिलाषा पूर्ति का साहस नहीं कर पाते। कोई ऐसा मार्ग ढूँढना चाहते हैं कि जिससे योग्यता सम्पादन करने का श्राम न करना पड़े और कोई दूसरा किसी दैवी उपाय से उन वस्तुओं को प्राप्त करादे जिनकी वे इच्छा करते हैं। यह कल्पना व्यर्थ की कल्पना है। यह अस्वाभाविक और ईश्वरीय नियमों की विरुद्ध इच्छा है हमें वही मिलेगा जो हमारी योग्यता और मेहनत के अनुसार हमें मिलना चाहिए। इस विश्व में कर्म का नियम बड़ा अटूट है। संत कबीर ने स्पष्ट कर दिया है—

आत्मबल की अकूत शक्ति।

सांसारिक अनेक प्रकार के बलों में आत्मबल सर्वोपरि है। इसकी समता कोई दूसरा बल नहीं कर सकता। यह आत्म बल सत्यता, पवित्रता और दृढता की त्रिवेणी में उत्पन्न होता है। यह त्रिवेणी जिसके अन्तःकरण में प्रवाहित होती है वही आत्मवान है। आत्म बल का उसी में भंडार समझना चाहिए।

एक महापुरुष का कथन है कि सत्य में हजार हाथियों का बल भरा हुआ है। पर यह बात अधूरी है। वास्तव में सत्य इतना बलशाली है कि उसकी प्रचंड शक्ति का ठीक ठीक अन्दाज करना मनुष्य की कल्पना शक्ति से बाहर की बात है। अनुभवी ऋषियों ने भौतिक बल की तुच्छता का और आत्म बल की महत्ता का भली प्रकार अनुभव करने के उपरान्त कहा है कि—"धिक बलं क्षत्रिय बलं ब्रह्मतेजो बलं बलम्" भौतिक बल को धिक्कार है,

ईश्वर के दरबार में, कमी वस्तु कछु नाहिं।
कर्म हीन कलपत फिरत, चूक चाकरी माँहि॥

हम सब कुछ प्राप्त कर सकते हैं। जिन वस्तुओं को मानव जाति के लिए सुखकर और हित कर समझा है, उनके लिए परमात्मा ने सबको सुविधा दी है। पर योग्यतानुसार सबको मिलता है। हमें योग्यताऐं सम्पादन करनी चाहिए, अपनी शक्तियां बढानी चाहिए। जब बेटा बालिग होजाता है तो पिता के कारोबार पर उसका अधिकार अपने आप हो जाता है। इसी प्रकार जैसे जैसे हम बालिगी का प्रमाण पेश करते जांयगे वैसे वैसे वे सम्पदाऐं हमें प्राप्त होती जायगी जो अधिकारी पात्रों को प्राप्त होती रहती है। सबलता ही सिद्धि है हमें अपने को सब दृष्टियों से सबल बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। सबल व्यक्ति स्वयं सिद्ध है। उसे नाना प्रकार की सुखदायक सिद्धियां स्वयमेव प्राप्त हो जाती हैं।

बल तो वास्तव में ब्रह्मबल ही है। सत्य की अटूट शक्ति के सामने बड़े बड़े शक्तिशालियों को नत मस्तक होना पड़ता है। हिरण्य कश्यपु, रावण, कंस, कौरव जैसे बलवानों को अपने विरोधी बहुत ही स्वल्प साधन वालों के सामने परास्त होना पड़ा। 'सत्यमेव जयते नानृतम्। सूत्र में श्रुति ने स्पष्ट कर दिया है कि केवल सत्य की ही विजय होती है, असत्य की नहीं। असत्य के द्वारा जो लाभ लोग उठा लेते हैं वह भी वास्तव में सत्य का ही दोहन है। सत्य की आड़ लेकर ही लोग किसी को ठग पाते हैं। यदि वे स्पष्ट करदें कि हमारा व्यवहार झूठा है तो उन्हें किसी काम में तनिक भी सफलता नहीं मिल सकती। जो लोग असत व्यवहार द्वारा कुछ सफलता प्राप्त कर लेते हैं असल में वह भी सत्य की ही विजय है।

सत्य परमात्मा का रूप है। सत्य नारायण भगवान की जिस हृदय में प्रतिष्ठा है। जो अपने विचार, कार्य और विश्वासों को सत्य से परिपूर्ण रखता है उसके अन्तःकरण में इतनी शान्ति एवं प्रसन्नता रहती है जिसकी तुलना करने वाला आत्म संतोष संसार की किसी भी सम्पन्नता एवं सफलता द्वारा प्राप्त नहीं हो सकता। सत्य रूपी नारायण जिसके मन में विराजमान है वह दैवी शक्ति से सम्पन्न है, वह ईश्वर में ओत प्रोत है और ईश्वर उसमें ओत प्रोत है। ऐसे मनुष्यों को ही सफल जीवन कहा जासकता है। उसी को भीतर और बाहर सच्ची शान्ति के दर्शन होते हैं। जिसके मन में असत्य नहीं वह सदा निर्भय है। उसे डरने या व्यथित होने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती।

पवित्रता, निस्वार्थता और उदारता का संमिश्रण है। जो तुच्छ स्वार्थों की अपेक्षा परमार्थ को प्रधानता देता है, जिसका हृदय संकीर्णता की विषैली दुर्गन्ध से मुक्त है, जो उदारता प्रेम, दया करुणा, स्नेह, आत्मीयता, सेवा, सात्विकता, सहायता की भावनाओं से तरंगित रहता है ऐसा मनुष्य इस भूलोक का देवता है। पवित्रता, सात्विकता सहृदयता दैवी सम्पत्ति है, जिसके पास यह सम्पत्ति मौजूद है वह संसार का सबसे बडा धनी है। पवित्रता से बढिया वस्त्र और आभूषण इस लोक में और कोई नहीं है। इसे धारण करके कुरुप से कुरुप मनुष्य भी अलौकिक सौन्दर्य शाली बन जाता है। पवित्रता एक ऐसी गंध है जो आस पास के वातावरण को हृदय हुलसाने वाली तरंगों से परिपूर्ण बना देती है। सदाचार, संयम सन्मार्ग, ईमानदारी, सरलता, शान्ति, नम्रता, विनय क्षमा, एवं प्रसन्नता का स्वभाव पवित्रता का प्रतीक है। यह गुण जिसमें मौजूद है उस देवोपम पुरुष की महत्ता को असाधारण ही समझना चाहिए।

दृढता अन्तःप्रदेश में जमे हुए सुदृढ विश्वासों के आधार पर उत्पन्न होती है। सुदृढ विश्वास केवल वे ही हो सकते है जिनमें सत्यता भरी हुई हो। कोई भय आने पर चोर अपना चोरी का माल छोड़कर भाग खडा होता है, पर जिसने पसीना बहाकर पैसा कमाया है वह भय उपस्थित होने पर अपने धन की रक्षा के लिए जान देने खडा होजाता है। वेश्या आपत्ति आने पर अपने जार पुरुष को धता बता देती है पर सती स्त्री पति पर प्राण निछावर करना एक खेल समझती है। विश्वास, विचार और कार्य वही दृढ होते हैं जिनमें सत्यता भरी हुई है। सुगन्ध उन्हीं फूलों में होती है जो वास्तविक हों, कागज के फूल तो आखिर कागज के ही रहेंगे।

दृढता मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण करती, उसे बल एवं गति प्रदान करती है, आगे बढाती है और उद्देश्य क्षेत्र तक ले पहुँचती है। पर वह स्थिर तभी रहती है जब सचाई, वास्तविकता एवं सद्बुद्धि पर निर्भर हो। झूठे भ्रमपूर्ण, स्वार्थ भरे, पक्षपाती आधार पर अधिक देर खडा नहीं रह सकता। लाभ का आकर्षण कम होने पर तथा खतरे का लक्षण दिखाई देने पर ऐसी दृढता क्षण भर में काफूर होजाती है पर जो सत्य की मजबूती है उसे मनुष्य बड़े से बडा खतरा उठा कर भी नहीं छोडता। देश के लिए, धर्म के लिए, कर्तव्य के लिए, जान की बाजी लगाने वालों और सर्वस्व बलिदान करने

योग शक्तियों का उदगम।

मनुष्य शक्तियों का पुञ्ज है। अज्ञान एवं माया के बन्धनों ने उसकी महानता को छिपा रखा है। इन कषाय कल्मषों से मनुष्य जैसे जैसे छुटकारा प्राप्त करता जाता है वैसे ही वैसे उसकी दिव्य शक्तियां निखरती चली जाती हैं। एकाग्रता, एवं अभ्यास द्वारा मानसिक शक्तियों को बढाया जा सका है और उनके द्वारा चमत्कारिक कार्य सम्पादित किये जासकते हैं।

श्रद्धा और विश्वास यदि अध्यात्म जगत के दो अचूक उपादान हैं। जैसा लोहा और अग्नि इन दो वस्तुओं के द्वारा अनेकों प्रकार के हथियार, औजार, वर्तन बनाये जासकते हैं, उसी प्रकार श्रद्धा और विश्वास के आधार पर अनेकों अध्यात्मिक चमत्कारी शक्तियां प्राप्त की जासकती हैं। अंधेरी रात के समय सुनसान जंगल में मामूली झाडी भूत बन जाती है और उससे डर कर मनुष्य बीमार पड जाते हैं और कई बार मर तक जाते हैं। अपना विश्वास ही अपने लिए भूत का रूप धारण कर सामने आ उपस्थित होता है, उसकी शक्ति इतनी प्रचंड होती है कि बीमार कर देना, मार डालना उसके लिए बायें हाथ की बात है।

चूहे के काटने पर एक आदमी यह विश्वास करके मर गया कि उसे सांपने काट खाया है। एक व्यक्ति साधारण दवा पीकर मर गया कारण यह था कि दवा की बोतल पर गलती से "जहर" का लेबिल किसी ने चिपका दिया था। रोगी ने समझा कि मैंने जहर पीलिया है, इसी भ्रम में उसकी मृत्यु होगई। एक बार योरोप के एक नगर में एक अपराधी को मृत्यु की सजा दीगई। डाक्टरों ने इस अपराधी को अपनी क्रिया द्वारा मार डालने की सरकार से स्वीकृति लेली। अपराधी को एक मेज पर लिटा कर उसकी आंखों से पट्टी बांध दी गई और गले के पास एक छोटी पिन चुभो दी गई जिससे एक दो बूंद खून निकला। उसी जगह पर ऊपर से एक पतली नली द्वारा पानी बहाया गया जो उसकी गरदन पर होता हुआ मेज के नीचे टपकने लगा। अपराधी को विश्वास कराया गया कि उसकी नस काट दी गई है जिसमें होकर खून बह रहा है उसने डाक्टरों की बात पर विश्वास कर लिया और केवल दस पांच बूंद खून निकलने पर ही अपने विश्वास के कारण कुछ ही देर में मर गया।

बहुत से रोगी साधारण रोग होने पर भी भय घबराहट और आशंका से उद्विग्न होकर अपने रोग को बढा लेते हैं और उसका दुष्परिणाम भोगते हैं। जहां विश्वास से अनिष्ट कर स्थिति आती है वहां दुखों का नाश भी हो जाता है। लोकमान्य तिलक के अंगूठे का एक बार गहरा आपरेशन होना था। डाक्टरों ने कष्ट अधिक होने के सभावना के कारण क्लोरोफार्म सुघाने की व्यवस्था की। लो. मा. तिलक ने डाक्टर से कहा—आप इतना झंझट न कीजिए मैं अपनी रुचि की किसी पुस्तक के पढने में व्यस्त होजाऊंगा और आपरेशन कर लेना। तिलक पुस्तक पढते रहे डाक्टर अंगूठा काटता रहा उन्हें कष्ट का भान न हुआ, अविचल भाव से हाथ को ढीला छोड़े हुए वे अध्ययन में लगे रहे।

उसकी शक्ति वालों के चरित्र से इतिहास भरे भड़े हैं। मन वाणी और कर्म की दृढ एकता बिना सत्यता, बिना पवित्रता के नहीं हो सकती।

आत्मबल के तीन स्रोत है। सत्यता, पवित्रता और दृढता यह तीनों निर्झरिणी जहां एकत्रित हो जाती हैं वहीं त्रिवेणी का संगम होता है। वहीं तीर्थराज बनता है। सत्यता इडा है, पवित्रता पिंगला है और दृढता सुषुम्ना है। इनके सुसाधन से आत्मबल की कुण्डलिनी शक्ति जागृत होती है। जिसने यह त्रिविधि सफलता प्राप्त करली वह निर्बल होते हुए भी बलवान है निर्धन होते हुए भी धनवान है, अशिक्षित होते हुए भी विद्वान है, लोक और परलोक की समस्त सिद्धियां उसके हाथ में हैं।

———

मनः शक्ति की महिमा अपार है, उसके द्वारा बहुत सी अद्भुत बातें प्रत्यक्ष होजाती हैं।

मनः शक्ति उत्पादक शक्ति है। कल्पना के आधार पर पहले योजनाऐं बनाई जाती हैं फिर वे प्रत्यक्ष रूप से सामने आजाती हैं। कोई मकान या कारखाना पहले किसी के दिमाग में बनता है। उसका, नकशा, ढांचा, आकार प्रकार जिस ढङ्ग का मन में बनाया जाता है, हूबहू वैसा ही बनकर कुछ समय में आंखों के आगे आखडा होता है। मनुष्य जिस प्रकार की बातों को सोचता रहता है वैसी ही परिस्थितियां उसके जीवन में सामने आती रही हैं। मन की उत्पादन शक्ति आश्चर्य जनक है, जो बीज मनः क्षेत्र में बोए जाते हैं वे नेत्रों के सामने मूर्त रूप में फलित होते हैं। मनुष्य अपने विचारों द्वारा अपने को साधु, सन्यासी, महात्मा, विद्वान, और सुसम्पन्न बनाता है और अपने ही विचारों द्वारा पागल, मूर्ख, सनकी, विक्षिप्त, कुकर्मी, तथा दीन हीन बनाता है। अपने को उठाना और गिराना अपने हाथ की बात है। इतना ही नहीं संसार में महायुद्ध, द्वेष, कलह, अशान्ति, अभाव, उपद्रव तथा सुख, शान्ति, सद्भाव उत्पन्न करना मनुष्य के हाथ की बात है। स्वर्ग या नरक प्राप्त करना, ईश्वर और मुक्ति को उपलब्ध करना केवल मात्र मनः शक्ति का खेल है, मन जिधर भी झुक पडता है उधर ही तूफानी गति से आगे बढता जाता है।

हम अपनी 'मानवीय विद्युत के चमत्कार' पुस्तक में सविस्तार बता चुके हैं कि मनुष्य शरीर के परमाणु किस प्रकार अपनी स्वतन्त्र सत्ता कायम कर लेते हैं। हमारे एक परम सात्विक प्रकृति के मित्र ने ऐसा मकान किराये पर लिया जिसमें पहले एक वेश्या रहा करती थी। उस मकान में पहुँचने पर उनको रातभर कामुकता एवं वासनापूर्ण सपने आते और प्राय नित्य ही स्वप्नदोष होजाता। उन्होंने अपना हाल हमें बताया, विचार के पश्चात् यही निष्कर्ष निकला कि उस मकान में रहने वाली वेश्या के परमाणुओं द्वारा कोई अदृश्य मूर्तियां बन गई होंगी और वे अपनी जननी वेश्या की भांति उस मकान में रहने वाले पर प्रभाव डालती होंगी, उन सज्जन को वह वेश्या दिखाई गई जो पहले उस मकान में रहा करती थी तो उन्होंने बताया कि हूबहू ऐसी स्त्री मुझे स्वप्न में दिखाई पडती है। वह मकान छोड देने पर उनका स्वप्नदोष दूर हो गया। जिन स्थानों में जैसे स्वभाव के मनुष्य रहते हैं उनमें उस तरह का वातावरण छा जाता है। उनके परमाणु अपनी स्वतंत्र सत्ता बनालते हैं और वहां आने वालों पर अपना प्रभाव डालते हैं। इसीलिए व्यभिचार, जुआ, नशेबाजी आदि के अड्डों पर आने जाने से कितने ही मनुष्य उस प्रभाव में आजाते हैं। जिन घरों में हत्या, यंत्रणा या अन्य भयंकर कर्म होते हैं या हुए हैं वहां जाने पर स्वभावतः भय लगता है और वहां से भागने की इच्छा होती है। कितने ही घर ऐसे होते हैं जिन्हें अशुभ कहा जाता है उनके पीछे कोई ऐसा ही दुखदायी इतिहास जुडा होता है।

कई बार किन्हीं प्रबल इच्छा शक्ति वाले व्यक्तियों के परमाणु अनुकूल अवसर पाकर स्वतंत्र सत्ता बना लेते हैं और जहां वह आदमी रहता था वहीं एक अदृश्य मूर्तियों की भांति रहने लगते हैं। वह व्यक्ति चाहे जीवित हो, चाहे मर गया हो, चाहे मर कर एक या अनेक जन्म लेचुका हो पर उसके परमाणु अपनी स्वतंत्र सत्ता बनाये रह सकते हैं। भूत प्रेतों के रूप में ऐसी ही "परमाणु प्रति मूर्तियां' कभी कभी हमें दिखाई पडती हैं। जहां मनुष्यों का अधिक आना जाना नहीं होता, जहां अग्नि नहीं जलती या जहां सुनसान रहता है उन स्थानों पर ऐसी प्रतिमूर्तियां बहुत समय तक जीवित रहती हैं। सुनसान खँडहर पड़े रहने वाले राजमहलों, मरघटों, तथा ऐसे ही स्थानों पर कभी कभी भूत प्रेतों का अस्तित्व अनुभव में आता है यह संबंधित व्यक्तियों की परमाणु मयी प्रति मूर्तियां होती हैं।

शरीर में उत्पादक शक्ति है। रज वीर्य से संतान उत्पन्न होती है। जख्म सडने पर मांस में

कीड़े पड जाते हैं। कब्ज होने पर टट्टी में सफेद कीड़े उत्पन्न होजाते हैं। पसीने से जुऐं पैदा होते हैं। नारू रोग में फोड़े के भीतर सफेद लम्बा कीडा निकलता है। प्राण निकल जाने पर देह सड़ने लगती है और कीड़े उत्पन्न होजाते हैं। डाक्टर लोग विभिन्न बीमारियों का कारण विभिन्न प्रकार के कीड़ों का शरीर में पैदा हो जाना बताते हैं। रक्त में कीड़ों की उत्पत्ति और विनाश का क्रम बराबर चलता रहता है। शरीर की ही भांति मनमें भी उत्पादन शक्ति है, वस्तुओं को पहले मन बनाता है फिर उसी ढांचे के अनुसार वे प्रत्यक्ष रूप से बनती हैं। कार्य का बीज विचार है। विचारों के द्वारा ही हम परिस्थितियां उत्पन्न करते हैं। इसके आगे चल कर परमाणु मयी प्रति पूर्तियां उत्पन्न होती हैं जिनकी चर्चा ऊपर की पंक्तियों में की जा चुकी है।

इन्हीं तत्वों के आधार पर कुछ विशेष शक्ति युक्त अदृश्य शक्तियां उत्पन्न की जासकती हैं। इस उत्पादन का एक स्वतंत्र विज्ञान है जिसे 'तंत्र विद्या' कहते हैं। विश्वास श्रद्धा और मनः शक्ति के संयोग से वे प्रतिमूर्तियां पैदा होती हैं। छाया-पुरुष, वेताल, कर्ण पिशाचिनी, भवानी, गायत्री आदि देवी देवताओं को कई व्यक्ति सिद्ध करते हैं और उनके द्वारा कुछ अनोखे काम करते देखे जाते हैं। यह सिद्ध देवी देवता अपनी ही एक मानसिक सन्तान होते हैं। इनमें शक्ति भी उत्पादक की मनःशक्ति और श्रद्धा के अनुसार होती है। किन्हीं साधकों की ये मानसिक सन्तानें निर्बल होती हैं वे अपना दर्शन देसकती हैं और थोडा सी हलचल कर सकती हैं। किन्हीं की प्रतिमूर्तियां बड़ी प्रबल होती हैं और वे अदृश्य होते हुए भी एक जीवित मनुष्य जैसी क्रिया करती हैं। दुर्वासा ऋषि ने अपनी जटाओं से एक ऐसी ही भयंकर प्रतिमूर्ति पैदा करके अम्बरीष के पीछे लगादी थी, इस प्रकार के और भी कितने ही वर्णन प्राचीन पुस्तकों में मिलते हैं। इन मानसिक संतानों का आकार प्रकार वेष भूषा, लिंग, स्वभाव, शक्ति उसीके अनुसार होती है जैसी कि साधक संकल्प करता है। जैसी आकृति ध्यान में रख कर वह साधन करता है वैसी ही आकृति की प्रति मूर्ति उत्पन्न होजाती है।

प्रतिमूर्तियों की तान्त्रिक साधनाऐं अलग अलग प्रकार की होती हैं। यह गुरु परम्परा से चलती है और गुप्त रखी जाती है, इन साधनओं का मेरु दंड सुदृढ विश्वास है। मरघटों में, जल में, रात्रि के सुनसान अंधकार में, कष्ट साध्य प्रक्रियाओं द्वारा कोई मंत्र सिद्ध किये जाते हैं। इन अद्भुत, भयंकर, दुस्साहस पूर्ण, कष्ट साध्य साधना प्रणालियों को प्रयोग में लाने वाला व्यक्ति ऐसा अनुभव करता है कि मैंने कोई भारी दुर्गम पथ पार किया है। मृत्यु तुल्य कठिनाई से लडकर सफल हुआ हूं। आत्म विश्वास, सफलता का गर्व, गुरु वचनों पर श्रद्धा, मंत्र विज्ञान पर विश्वास, यह सब मिलकर साधक के अन्तःकरण में एक सुदृढ ग्रन्थि उत्पन्न करती है। इस ग्रन्थि के परिपक्वता के साथ साथ मंत्र बल एवं सिद्ध देवता का कर्तृत्व सबल होता है और उस शक्ति से कुछ अद्भुत कार्य पूरे होते हैं। अनेकों अनुष्ठान अपने नियत विधि विधान द्वारा पूरे होने के उपरान्त कृत कार्य होते देखे गये हैं। इन कार्यों का मेरुदंड विश्वास है। जितना ही विश्वास दृढ एवं अविचल होगा उतना ही लाभ होगा। संदेह, अविश्वास, तर्क वितर्क की मनस्थिति रहने पर इन क्रिया पद्धतियों का लाभ नष्ट होजाता है। तंत्र साधना एक मनोवैज्ञानिक अभिचार है। इसमें सफल वे ही हो पाते हैं जो एकनिष्ठ हैं। बिना पढ़े, एकान्त प्रिय, गुरु भक्त, धुनि के पक्के, दुस्साहसी, प्रकृति के मनुष्य इसमें सफल होते हैं। विचार शील, तर्कवान, बुद्धिवादी, साधारण जीवन बिताने वाले प्रायः इस दिशा में बहुत कम सफल होते देखे गये हैं। क्योंकि वे मंत्र शक्ति और देवी देवताओं के अस्तित्व के विषय में संदिग्ध रहते हैं। असल में उनका स्वतंत्र कोई अस्तित्व नहीं है, केवल अपनी मनः शक्ति का एक चमत्कार है। परन्तु जो इस तथ्य को जान लेते हैं उनका

बिश्वास ढीला पड़ जाता है, देवभक्तों साधकों की भांति उनमें अटूट श्रद्धा नहीं रहती, फल स्वरूप वे तंत्र साधना में सफल भी नहीं होपाते।

कई बार ऐसा भी होता है कि अपने में कुछ विशेष शक्ति न होते हुए भी दूसरे के विश्वास को उसी के ऊपर अभिप्रेत करके कुछ आश्चर्य जनक कार्य कर दिखाये जाते हैं। कोई बडी रंज की, खुशी की या आश्चर्य की खबर सुना देने या रस्सी का सांप बना कर अचानक डरा देने से हिचकी बन्द हो जाती हैं। कारण यह है कि चित्त हिचकी को भूल कर और दूसरी तरफ लग जाता है। भूत प्रेतों को दूर करने के लिए ओझा या सयाने लोग झाड़ फूँक, उतारा आदि करते हैं उससे रोगी को बिश्वास होजाता है कि भूत को मेरे ऊपर से हटा दिया गया। थाली बजाकर सांप की आत्मा को आह्वान करते हैं, काटे हुए मनुष्य पर सांप की आत्मा उतरे इसके लिए एक ओझा उस काटे हुए मनुष्य को चुनौती (सजेशन) देता रहता है। अन्त में सांप सर चढकर बोलता है। इस प्रकार के तान्त्रिक कार्यों का आधार मनः शक्ति का स्फुरण ही है। चित्त को एक ओर से हटाकर दूसरी ओर लगा देने से पहली बात को मनुष्य भूल जाता है और हिचकी बन्द होजाती है। थाली बजने, सर्प का आह्वान होने के क्रिया कलाम को देखकर सांप का काटा हुआ व्यक्ति प्रभावित होता है, उसके मनमें संकल्प उत्पन्न होते हैं। आवेश और संकल्प के सम्मिश्रण के साथ स्वसंमोहन क्रिया होती है और उस स्थिति में सर्प की भावना एव भाषा में रोगी बात करने लगता है मुझे यह चाहिए, इस कारण मैंने इसे काटा आदि बातें वह कहता है और घर वालों के यह आश्वासन देने पर कि सर्प देवता की इच्छा पूर्ण कर दी जावेगी, रोगी को विश्वास, सन्तोष एवं समाधान होजाता है। इस समाधान की प्रबलता के कारण ही विष का घातक प्रभाव नष्ट होजाता है और रोगी के प्राण बच जाते हैं। परन्तु यदि किसी कारण बश रोगी इन बातों पर विश्वास न करता हो, उस अनुष्ठान से प्रभावित या उत्तेजित न हो तो विष का प्रभाव नष्ट न होगा।

पीर, मसान आदि की चौकी रख कर किन्हीं मनुष्यों को मार डालने का उपचार किया जाता है। और कई बार ऐसे प्रयोग सफल भी होते हैं। ज्योतिषी लोग किन्हीं को बतादेते हैं कि तुम अमुक दिन मरोगे तो कभी कभी ऐसा भी देखा गया है कि वह उसी दिन मर भी जाता है। कोई वैद्य डाक्टर किसी साधारण रोगी को डरा कर अधिक पैसा लेने के लिए भयंकर रोग बतादेते हैं और अपने काबू से बाहर के रोग को असाध्य कह देते हैं, उनके कथन के आधार पर कई बार मृत्युएं हो भी जाती हैं। यह विश्वास शक्ति का चमत्कार है। जो व्यक्ति समझता है कि मेरे ऊपर पीर की चौकी चलाई गई है वह अपने संकल्प से स्वतः ही डर कर मृत्यु के मुह में घुस जाता है। ज्योतिषी या वैद्य के बचनों पर विश्वास करके भी कितने लोग अकाल मृत्यु मर जाते हैं।

किन्हीं व्यक्तियों को ध्यानावस्था में, स्वप्न में, अर्धनिद्रित अवस्था में या आवेश में देवी देवताओं के दर्शन होते हैं। यह संकल्प की मूर्तिमान प्रक्रिया है। जब विश्वास दृढ होजाता है और उस सम्बन्ध में तर्क वितर्क नहीं उठते तो भावनाऐं इन्द्रियों की अनुभव शक्ति के ऊपर कब्जा करने लगती हैं। हम देखते हैं हिप्नोटिज्म से विमोहित किये हुए व्यक्ति कुछ का कुछ देखते और कुछ का कुछ अनुभव करते हैं। कड़ई चीज खिलाते हुए उन्हें कहा जाय कि इसका स्वाद मीठा है तो वे उसे मीठा ही अनुभव करने लगते हैं। जल को थल और थल को जल समझने लगते हैं। हिप्नोटिस्ट जैसे २ आदेश देता जाता है विमोहित व्यक्ति वैसे ही वैसे अनुभव करता है। हिप्नोटिज्म की इस क्रिया पद्धति को एक मनुष्य दूसरे पर प्रयोग करे यह आवश्यक नहीं. कोई व्यक्ति खुद अपने संकल्प बल से अपने आपको भी स्वसंमोहन कर सकता है और संमोहन से पूर्व जो संकल्प किये थे उनको मूर्त रूप में इन्द्रियों से अनुभव कर सकता है। इस तरह

वह स्वसंमोहित अवस्था में इष्ट देव को या अन्य अभीष्ट पदार्थों को देख सकता है उसकी वाणी सुन सकता है, उसका स्पर्श कर सकता है, सूंघ और चख सकता है।

योग विद्या का बहुत बडा भाग स्वसंमोहन विज्ञान के ऊपर निर्धारित है। मेस्मरेजम द्वारा दूसरों को बेहोश किया जाता है पर स्वसंमोहन से मनुष्य अपने आपको योग निद्रा में ले जासकता है, इसे समाधि अवस्था भी कहते हैं। देवी देवताओं के दर्शन उनसे वार्तालाप इस दशा में भली प्रकार होसकता है। स्वर्ग, नरक, लोक लोकान्तरों के दृश्य देख सकता है। जैसे चाहे वैसे शब्द, रूप, रस, गंध स्पर्श का अनुभव कर सकता है। नाद योग वालों को तरह तरह के मधुर शब्द, संगीत, ध्वनियां सुनाई पड़ती हैं। ध्यान योग वाले तरह २ के रूप देखते हैं। लय योग तरह तरह के रसों का, ब्रह्मानन्द या परमानन्द का अनुभव करते हैं। विधु योगी स्पर्श जन्य आनन्दों का रसास्वादन करते हैं। हैय योगी दिव्य सुगंधियों की अनुभूति लेते हैं। साधन से पूर्व जिस प्रकार के विचार और विश्वास होते हैं उसीके अनुसार यह अनुभूतियां आती हैं। मुसलमान साधक को अपने विचार और विश्वास के अनुसार और बौद्ध साधक को अपनी मान्यता के अनुसार साधन में अनुभूतियां होंगी। जैनी, हिन्दू, इसाई, लामा, आदि के योगों की मान्यताऐं अलग अलग हैं। उन मान्यताओं के अनुसार ही उनके साधक स्वाक्षात्कार होते हैं। स्वसंमोहन विज्ञान के आधार पर साधक अपनी मान्यताओं को थोड़े बहुत हेर फेर के साथ अपनी इन्द्रियों द्वारा भी मूर्तमान अवस्था में अनुभव कर सकता है।

योगिक शक्तियों का उद्गम बाहर नहीं हैं। कहीं बाहर से, किसी देवी देवता की कृपा से वे प्राप्त नहीं होतीं। अपने अन्दर शक्तियों का प्रचुर भण्डार भरा पड़ा है। आत्म विद्या द्वारा अपनी मानसिक शक्तियों को साधक लोग अपने ही ऊपर नियोजित करते हैं, और अभीष्ट लाभ प्राप्त करते हैं। अपना भगवान रचकर उसमें अपनी भक्ति द्वारा आप ही प्रवेश करके आत्मा परमात्मा बन जाता है। इस महा सत्य को जान कर वेदान्त शास्त्र ने – 'सोहमस्यि सोऽहं' तत्वमसि' अयमात्मा ब्रह्म, सर्वखिल्विदं ब्रह्म, का प्रकाश संसार को दिया है। अद्वैत वाद की पृष्ट भूमि आत्मा की महाशक्ति की जानकारी पर आधारित है। दूसरे जीवजन्तु परमात्मा को नहीं जानते, मनुष्य की ज्ञानशक्ति ने परमात्मा का आविष्कार किया है। विश्व का कण कण शक्ति से परिपूर्ण है, एक एक परमाणु में प्रलय उपस्थित करने की शक्ति भरी हुई है। फिर मनुष्य का शरीर तो असंख्य परमाणुओं का बना हुआ है। मानसिक परमाणु उससे भी शक्तिशाली हैं फिर आत्मिक सूक्ष्म परमाणुमयी शक्ति की महानता की तो कुछ तुलना ही नहीं। ब्रह्माण्ड की सूक्ष्म सत्ता पिण्ड में मौजूद है, वृक्षका सम्पूर्ण अस्तित्व बीज में मौजूद है केवल प्रस्फुटन की आवश्यकता है। अध्यात्मिक साधनाओं द्वारा हम अपनी उन्हीं विभिन्न शक्तियों को जगाते हैं और योग के चमत्कारों को उपलब्ध करते हैं।

प्रचंड संकल्प शक्ति द्वारा अपने आपको प्रभावित करके यथेच्छ आत्मनिर्माण किया जा सकता है। सांसारिक वस्तुओं द्वारा जो सुख मिलते हैं वैसे ही या उससे भी अधिक सुखानुभूति संकल्प के आवेश द्वारा प्राप्त की जासकती है दूसरों को प्रभावित करके उनको उपयोगी मार्ग पर लगाया जासकता है। अपने या दूसरों के मानसिक दोष दूर करके शारीरिक एवं बौद्धिक दृष्टि से स्वस्थ बना या बनाया जासकता है। इच्छित पुनर्जन्म, परलोक या मुक्त अवस्था प्राप्त करने योग्य मनोभूमि बनाई जासकती है। मानसिक संतुलन ठीक रहने तथा तत्वदर्शी सूक्ष्म दृष्टिकोण अपनाने से सांसारिक प्रिय अप्रिय घटना प्रवाह के कारण आने वाले दुख शोकों से बचा जासकता है। इसके अतिरिक्त किन्हीं विशेष अनुष्ठानों, साधनों के आधार पर कुछ आश्चर्य जनक सिद्धियां भी मिलती हैं।

आत्म साधना में, योग साधना से, अपना

प्रत्यक्ष अष्ट सिद्धियां।

पिछले पृष्टों पर वैज्ञानिक आध्यात्म बाद के जिन तथ्यों का प्रतिपादन किया है। उनको अपने विचार क्षेत्र में, विश्वास भूमि में स्थापित कर लेने तथा व्यवहारिक जीवन में कार्य रूप से प्रयोग में लाने पर मनुष्य की आन्तरिक स्थिति बहुत मजबूत होजाती है। उस स्थिति पर पहुँचने से आठ सिद्धियां प्राप्त होती हैं जो काल्पनिक सिद्धियों की अपेक्षा अनेक गुनी आनन्द दायक, कल्याणकारी और मंगल मयी सिद्ध होती हैं। इन अष्ट सिद्धियों का वर्णन नीचे किया जाता है।

(१) निराकुलता—छोटी छोटी बातों से मनुष्य बड़ा उद्विग्न, उत्तेजित एवं दुखी होता रहता है। मृत्यु, विछोह हानि आक्रमण आदि की अप्रिय अनिच्छित परिस्थितियां आजाने पर क्रोध शोक, द्वेष, दुख, चिन्ता, एवं भय से व्याकुल हो जाता है। इस व्याकुलता को शांत करने के लिए

संबध करके, अपनी शक्तियों को प्रस्फुटित करके उपयोगी तत्वों का अविर्भाव होता है। योग एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जिसके अनुसार अपने शरीर और मन की प्रयोग शाला में अन्वेषण, परीक्षण, प्रयोग के आधार पर महत्व पूर्ण तथ्यों का आविष्कार किया जाता है। इस विज्ञान द्वारा हमारे पूर्वज योग की चमत्कारिक सिद्धियां प्राप्त कर चुके हैं। अब डाक्टर फ्रायड डाक्टर मैस्मर, डाक्टर ली प्रभृति मनोविज्ञान शास्त्रियों ने आधुनिक तरीके से वैज्ञानिक खोज आरम्भ की हैं। यह विज्ञान जितना ही जितना स्पष्ट और परमार्जित होता जारहा है उतनी ही उतनी मनः शक्तियों की महत्ता प्रकट होती जारही है। वह शुभ दिन शीघ्र ही आने वाला है जब विज्ञान, मनुष्य की आन्तरिक शक्तियों को सर्वोपरि और महान लाभ स्वीकार करेगा। तब वेदान्त और मनोविज्ञान दोनों एक स्वर से आत्म विद्या का जय घोष करेंगे।

———

वह अपनी शक्तियां बहुत बड़ी मात्रा में खर्च कर डालता है और कभी कभी तो आत्मघात तथा अन्यान्य भयंकर दुष्कर्म करने को तैयार होजाता है। यह व्याकुलता मानसिक उद्विग्नता जीवन में विक्षेप उत्पन्न करने वाला एक भयंकर उत्पात है। आत्मवान् इस उत्पात से बच जाता है। वह जानता है कि संसार के पदार्थों में नष्ट या परिवर्तित होने का स्वाभाविक गुण है, इसमें शोक की कोई बात नहीं। दूसरों की दुष्टता को वह उनका पागलपन, मानसिक रोग एवं उन्माद समझता है और जैसे सन्निपात के रोगी द्वारा किये हुए अनुचित व्यवहार पर उसके आत्मीयजन कुपित नहीं होते, वरन् उसकी कड़ुई मीठी चिकित्सा कराते हैं उसी प्रकार वह दुष्टों से रुष्ट नहीं होता वरन् उनकी कड़ुई मीठी चिकित्सा की सद्भाव पूर्वक व्यवस्था करता है। 'मैं आत्मा हूं, मेरा धर्म कर्त्तव्य करना है इस विश्वास के साथ वह कर्तव्य कर्तव्यों में प्रवृत्त होता है, सफलता असफलता का सुख दुख उसे उद्विग्न नहीं करता। इस संसार में जितना दुख दृष्टि गोचर होता है उसमें तीन चौथाई मानसिक और एक चौथाई रोग एवं अभाव जन्य है। आत्मवान का बौद्धिक दृष्टि कोण आध्यात्म वादी होता है इसलिए उसके मानसिक दुख नष्ट होजाते हैं। और दुखों के एक बड़े भारी भाग से सहज में ही छुटकारा मिल जाता है।

आकुलता की अग्नि में आत्मिक रस जलते हैं और मनुष्य की मनोभूमि मरघट के समान ऊजड़ होजाती है, इसके विपरीत आत्मवान् होने के कारण जिसे निराकुलता प्राप्त है वह हर घड़ी एक सात्विक शान्ति सन्तोष एवं प्रसन्नता का लाभ प्राप्त करता है। यह आत्म बल की प्रथम सिद्धि है।

(२) सहायता—आत्मबल की दूसरी सिद्धि है—दूसरों द्वारा अधिक सहायता प्राप्त होना। उदार स्वभाव, सेवाभावी, नम्र एवं मधुर भाषी होने के कारण आत्मवान् व्यक्ति के व्यक्तित्व की गहरी छाप उन लोगों के ऊपर पड़ती है जो उसके निकट सम्पर्क में आते हैं। थोड़ा बहुत भी जिससे संबंध

होता है। वे उसके गुणों पर मुग्ध होजाते हैं मधुर भाषण को वशीकरण कहा गया है, पर जिस मधुर भाषण के साथ सचाई, सेवा, प्रेम और आत्मीयता भी मौजूद हो वह तो बहुत बड़ा वशीकरण बन जाता है, उसके द्वारा तो उनको भी वश में किया जासकता है जो अन्य किसी उपाय से वश में नहीं आते। इस प्रकार जो व्यक्ति दूसरों के मन में अपने लिए स्थान बना लेता है उनके हृदया को जीत लेता है वह उनकी सहायता का अधिकारी भी बन जाता है ऐसे व्यक्तियों के लिए किसी वस्तु की कमी नहीं रहती। तन मन धन से लोग उसकी सहायता करते रहते हैं या करने का तत्पर रहते हैं। जन समाज की सहायता से अनेकों कठिनाइयां दूर होती हैं, अनेकों उत्कर्ष के अवसर मिलते हैं, अनेकों आपत्तियां टल जाती हैं। इसके अतिरिक्त उनकी सद्भावनाओं से आनन्द सन्तोष और साहस मिलता है। प्रशंसकों मित्रों और अनुयायियों के बीच रहते हुए मनुष्य को स्वर्गीय सुख का अनुभव होता है अपनी सद्वृत्तियों के कारण आत्मवान मनुष्य सहज ही संसार की प्रचुर सहायता प्राप्त कर लेता है।

(३) आरोग्यता—चूंकि आत्मवान मनुष्य संयमी होता है। उसके आहार विहार सात्विक होते हैं, चटोरेपन को वह पास नहीं फटकने देता। नियमित दिन चर्या रखता है और शक्तियों को अनावश्यक खर्च नहीं करता। ब्रह्मचर्य और तपश्चर्या को उसके जीवन में प्रधानता मिली होती है। शरीर और मनमें पवित्रता के अंश पर्याप्त मात्रा में रहने के कारण बीमारियां उत्पन्न होने एवं पनपने का मार्ग बन्द होजाते हैं। ऐसे व्यक्ति प्रायः बीमार नहीं पड़ते यदि कभी कोई अवसर आभी गया तो बहुत जल्द अच्छे होजाते हैं। उनकी आयु बढती है। विषय सेवन एवं मानसिक उत्तेजनाओं के कारण जीवनीशक्ति का बहुत बड़ा भाग नष्ट होजाता है और लोग अपनी पूरी आयु भोग नहीं पाते परन्तु आत्मवान् व्यक्तियों को ऐसी कठिनाई नहीं आती। वे अपनी पूरी आयु भोगते हैं दीर्घजीवी होते हैं और सदा स्वस्थ एवं प्रसन्न रहते हैं। यह आत्मबल की तीसरी सिद्धि है।

(४) सफलता—सफलता की लाभ की इच्छा से आरम्भ किये हुए कामों में अनेकों व्यक्ति अनेकों बार असफल रहते हैं, बार बार उन्हें विफलता का मुँह ताकना पड़ता है। इसका कारण कई बार तो परिस्थितियों की प्रतिकूलता भी होती है पर अधिकांश ऐसा देखा जाता है कि कार्य करने वाले व्यक्ति की मानसिक व्यवस्था ठीक न रहने के कारण असफलता मिलती है। अस्थिरता, अन्यमनस्कता, असावधानी, अरुचि, उत्तेजना, निराशा, घबराहट आदि मानसिक त्रुटियों के कारण बड़े बड़े काम बिगड़जाते हैं। यह त्रिटियां पग पग पर कठिनाई उत्पन्न करती और धीरे धीरे काम बिगाडती रहती हैं, अन्ततः एक दिन समूचा काम नष्ट होने का अवसर आजाता है। आत्मवान् मनुष्य इस स्थिति से बच जाता है। उसका मन स्थिर होता है, चित्त एकाग्र रहता है, स्वभाव में धीरता, गभीरता और सावधानी होती है, निश्चित दृष्टि कोण, निश्चित कार्यक्रम, निश्चित कर्तव्य होने के कारण क्षण क्षण में आशा निराशा के झूले में नहीं झूलना पडता, और न आवेशों की उत्तेजना रहती है। ऐसीस्थिति प्राप्त होने के कारण आत्मवान् व्यक्ति हाथी के समान निश्चत गति से सावधानी पूर्वक कदम धरता चला जाता है और अपने उद्देश्य को प्राप्त कर लेता है। आत्मवान् का मानसिक संतुलन ठीक रहता है उसका विवेक यथार्थवादी और निर्णय सूक्ष्म होता जिससे वह अपनी सामर्थ, परिस्थिति और वस्तुस्थिति को देखकर कार्य आरंभ करता है और जितने श्रम, समय तथा साधन की आवश्यकता होती है उसे धैर्य पूर्वक जुटाता है, रास्ते में जो कठिनाइयों आती है उनसे बिना घबराये लडता है। और उलझी हुई समस्याओं को सुलझाता है इस प्रकार उसे आमतौर से सफलताऐं ही उपलब्ध होती हैं असफलता के बहुत ही कम अवसर उसके सामने आते हैं। वह जो कार्य आरम्भ करता

है वह पूरे ही होजाते हैं । जिससे उसका साहस और आनन्द दिन दिन बढता जाता है। यह आत्म-बल की चौथी सिद्धि है।

(५) **सम्पन्नता**—लोग कहते हैं कि—वेईमानी से धन कमाया जाता है।" पर यह उनकी भूल है। वेईमान लोग भी ईमानदारी की आड में ही कमाई करते हैं। यदि कोई व्यक्ति अपने बारे में यह सार्वजनिक घोषणा करके और एक साइनवोर्ड अपने गले में लटकाले कि "मैं चोर, ठग या वेई-मान हूँ मेरे काम वेईमानी और ठगी से भरे रहते हैं।" इस घोषणा के बाद भी कोई व्यक्ति वेईमानी के आधार पर कुछ कमाके दिखावे तो यह समझा जासकता है कि वेईमानी में भी कमाने की शक्ति है। वास्तव में विशुद्ध वेईमानी से एक पाई भी नहीं कमाई जासकती । वेईमानी की बहिन तो दरिद्रता है। कोई आदमी ईमानदारी की आड में वेईमानी करले तो इससे ईमानदारी की ही उत्पादन शक्ति सिद्ध होती है वेईमानी की नहीं ।

सचाई और ईमानदारी के आधार पर स्थित कारोबार ही चलते और फलते फूलते हैं। विश्वास प्रतिष्ठा निश्चितता एवं प्रमाणिकता का आधार मिलजाने पर ग्राहक उसी दुकानदार को पकड लेता है। और सदा के लिए उसका एक लाभ पहुंचाने वाला सहायक बन जाता है। इसके विपरीत वेई-मान दुकानदार से एक बार ठग जाने के उपरान्त, स्वयं तो उसे सदा के लिए छोड ही देता है, जहाँ तक उसका बस चलता है दूसरों को भी उसके पास जाने से रोकता है। निश्चय ही ईमानदारी की धर्म नीति पर अवलम्बित कारोवार द्वारा मनुष्य को सम्पन्नता प्राप्त होती है। भले ही वह धीरे धीरे, अधिक काल में और क्रमशः आगे बढने वाली हो पर होनी वह सुनिश्चित है। बरगद का पेड देर में बढता है पर ठहरता बहुत समय तक है । ईमान-दारी के साथ किये जाने वाले कारोबार भी ऐसे ही होते हैं। उस कमाई से मनुष्य फलता फूलता और सुखी रहता है । वेईमान करोडपति की अपेक्षा, ईमानदार मध्यवृत्ति का मनुष्य अधिक आनन्द में रहता है। उसी की सम्पन्नता सच्ची सम्पन्नता है। आत्मवान् व्यक्ति को अपने आत्मवल द्वारा चौथी सिद्धि सम्पन्नता प्राप्त होती है।

(६) **लोकप्रियता**—चरित्रवान् सत्यनिष्ठा कर्तव्य परायण, उदार, लोकसेवी, मनुष्य जनता में देवता के समान् पूजे जाते हैं। उनकी सर्वत्र प्रशंसा होती है, स्तुति, प्रतिष्ठा, श्रद्धा एवं सम्मान की उनके लिए कमी नहीं रहती। शरीर मर जाने पर भी उनका यश शरीर हरिश्चन्द्र, दधीच, प्रहलाद प्रताप, शिवाजी, हकीकतराम आदि की तरह अमर रहता है । उसके प्रकाश में युगयुगान्तरों तक जनता अपना पथ निर्माण करती है । ऐसे पुरुष वेताज के बादशाह कहे जाते हैं। कीर्तियुक्त, प्रति-ष्ठित जीवन ही वास्तविक जीवन है। ऐसा जीवन यदि किसी प्रकार अभाव और कठिनाइयों से ग्रसित हो तो भी उसमें आनन्द की अजस्र धारा प्रवाहित होती रहती है । आत्मवान् का आत्मा अपनी प्रतिष्ठा आप करता है। वह अपनी दृष्टि में आप ऊंचा होजाता है। ऐसा उच्च पद संसार के सब प्रतिष्ठा युक्त पदों से ऊंचा है आत्मवान् को यह उच्च पदवी छठी सिद्धि के रूप में मिलती है

(७) **प्रसन्नता**—शुभ कर्मों का फल भी शुभ होता है। सद्भावों से शान्ति की उत्पत्ति होती है। सत्कर्म करने वालों को परमात्मा आनन्द दायक परिणाम प्रदान करता है। आत्मवान् व्यक्ति सत्कर्म करते हैं इसलिए उनके आस पास सुख दायक परिस्थितियां घिरी रहती हैं। कर्तव्य पराय-णता की खुशी उनके चहरे पर हरघडी छाई रहती है, आत्मसन्तोष की मधुरिमा उनके नेत्रों में भरी रहती है। सतोगुण की छाया उनके ओठों पर मुस्कराहट के रूप में नाचती रहती है।

कषाय, कल्मष पाप ताप, दुर्भाव दुष्कर्म, एवं भ्रम अज्ञान के कारण ही मनुष्य मुँह फुलाये आंखें चढाये, तिरछा तिरछा इठकर चलता है। चिन्ता, भय, शोक एवं क्रोध भी इन्हीं कारणों से होता है। अप्रसन्नता एक आध्यात्मिक रोग है!

जो आत्मिक दृष्टि से स्वस्थ है उसके लिए परमात्मा के इस पुनीत उपवन संसार में अप्रसन्नता का कोई कारण नहीं दीखता।

संसार की हर वस्तु तीन गुणों से बनी है। उसके जिस पहलू को हम देखते हैं वह वैसी ही दिखाई पड़ती है। द्वेष बुद्धि से देखने पर वस्तुऐं बुरी लगती हैं उपेक्षा वृत्ति रखने से वे व्यर्थ मालूम पड़ती हैं और सद्बुद्धि से देखने पर सृष्टि के कण कण में से पवित्रता, सुन्दरता, सरलता एवं सरसता का निर्झर झरता हुआ दृष्टि गोचर होता है। आध्यात्मवादी इसी दृष्टि कोण को अपनाये रहते हैं, तदनुसार उन्हें चहुँ ओर आनन्दमय वातावरण दृष्टि गोचर होता है। अप्रिय बातों को अपने लिए सुधार की ईश्वरीय चुनौती समझ कर वे उन्हें भी आनन्द की दृष्टि से देखते हैं और सदा प्रसन्नता रहते हैं। यह अविच्छिन्न प्रसन्नता आत्मबल की सातवीं सिद्धि है।

(८) स्वतंत्रता—प्राणी स्वतंत्रता प्रिय है। पशु पक्षी भी बंधन से मुक्त होकर स्वतंत्र रहना पसंद करते हैं फिर मनुष्य को इच्छा तो और भी प्रबल है। आज राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक गुलामी से छूटने के लिए प्रचण्ड आन्दोलन होरहे हैं। क्योंकि पराधीनता में दुख और स्वाधीनता में सुख है। सबसे बडी मानसिक पराधीनता होती है, इससे छुटकारा पाना परमपुरुषार्थ माना गया है। विषय, विकार, अज्ञान, कुसंस्कार और कुविचारों से छूटना सबसे बडी स्वतंत्रता है इसे ही आध्यात्मिक भाषा में 'मुक्ति' कहा जाता है। मुक्ति में परमानन्द माना गया है। यही जीवन का परमलक्ष है। योगीजन सदा मुक्ति के प्रयत्न में लगे रहते हैं।

इन्द्रियों के विषय भोग, तृष्णा, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद मत्सर आदि की प्रबलता आत्मा की शक्ति को कुंठित कर देती है। इन कुसंस्कारों का जोर इतना बढ जाता है कि उन्हीं की प्रेरणा प्रधान रहती है, उन्हीं की तृप्ति के लिए मनुष्य कार्य करता रहता है। आत्मा की पुकार इस नक्कार खाने में तूती की आवाज की तरह दब जाती है। गृहस्वामी को कोई टके सेर नहीं पूछता, नौकर चाकरों की हुकूमत चलती है। बे लगाम घोड़े जैसे रथवान की परवाह न करके चाहे जिधर दौड़ पड़ते हैं और रथवान अपनी विवशता अनुभव करता हुआ चुपचाप बैठा रहता है यही स्थिति आत्मा की होती है। कुसंस्कारों के अनुसार जीवनक्रम चलता रहता है, आत्मा उसमें परिवर्तन करना चाहता है पर उसे बार बार असफलता मिलती है। इस पराधीनता को ही माया, बन्धन, भवसागार, कहा है इससे छुटकारा पाकर जब आत्मा अपने राज्य की बागडोर अपने हाथ में संभाल लेता है तो वह मुक्त या जीवन मुक्त कहा जाता है। ऐसी दशा में पुनर्जन्म लेना न लेना या जहां चाहें वहां लेना उसके अपने हाथ में होता है, अपनी इच्छा पर निर्भर रहता है। आत्मा सत् चित् आनन्द स्वरूप है। अपार आनन्द का वह केन्द्र है। आत्मस्थित होने पर हर घडी वह स्वाभाविक सात्विक आनन्द अनुभव में आता है। मुक्त पुरुष परमानन्द में, ब्रह्मानन्द में, लीन रहते हैं। पूर्ण स्वतंत्रता में पूर्ण आनन्द है। यह आनन्द दायक स्थिति आत्मबल की आठवी सिद्धि है जिसे आत्मज्ञान पुरुष सहज ही प्राप्त कर लेते हैं।

उपरोक्त आठों सिद्धियां का महत्व इतना अधिक है कि उसकी तुलना में आकाश में उड़ना, अदृश्य होना, जल पर चलना आदि के आश्चर्य चमत्कार बहुत ही छोटे दर्जे के—बालकों के मनोविनोद के समान ठहरते हैं। चमत्कारों के आधार पर शरीर को कुछ सुगमता और मन को प्रसन्नता मिल सकती है, लेकिन उपरोक्त अष्ट सिद्धियों का लाभ और आनन्द तो उसकी अपेक्षा हजारों गुना अधिक है। यह सिद्धियां हैं, सच्ची हैं, स्थायी हैं, सुगम, लोक हितकारिणी है और जीवन को सर्वाङ्ग पूर्ण बनाने वाली हैं। इनका प्राप्त करना ही जीवन की सच्ची सफलता है। सिद्धि के इस राज मार्ग पर चलने का, आत्मबल प्राप्त करने का हमें पूरी शक्ति के साथ प्रयत्न करना चाहिए।

——

बढ़े चलो, उन्मत्त सिपाही !

(श्री० रामकुमार चतुर्वेदी)

मन निश्चय-सा, वेग पवन-सा
बढ़े चलो, उन्मत्त सिपाही !

(१)

कल का काम आज कर डालो,
और आज का अब कर डालो !
चलो समर में आज युगों के,
दबे हुए अरमान निकालो !
बैठे काम नहीं चलने का,
कुछ कर डालो, कुछ कर डालो !
यह रणभेरी की पुकार है,
भय कैसा ? बढ़कर लोहा लो !
होश नहीं आता है तुमको,
देश इधर वीरान हो रहा,
रुला चुकी है तुम्हें हजारों बार,
तुम्हारी लापरवाही !
बढ़े चलो उन्मत्त सिपाही !

(२)

गत युग की हारों को भूलो,
उफ ! यह भी कैसी निर्बलता !
बलि का नाम सुना कि हगों से,
वेग अश्रु का फूट निकलता !
जब प्राणों पर आ पड़ती है,
पशु भी अपनी पर आ जाते !
शर्म नहीं आती है ? नर होकर
तुम पीछे कदम हटाते
ज्वालमुखि हो, लेकिन तुमने
अब तक फटना सीख न पाया !
सुनो ! जुल्म के चरण दलित,
करने की देते हैं आवाही !
बढ़े चलो उन्मत्त सिपाही !

(३)

विश्व शक्ति का है, निर्बलता
रोज यहां कुचली जाती है !
अश्रु नहीं संकल्पों के बल पर,
दुनियां बदली जाती है !
किसने कहा कि तुम निर्बल हो ?
किसने कहा लहू पानी है ?
वर्दी फटी हुई है तो क्या ?
हृदय प्रलय का अभिमानी है !
चलो क्रूरता के महलों में,
हम विप्लव-ज्वाला धधकादें !
हम मानव हैं, कभी न सह सकते,
हैं पशुता की मनचाही !
बढ़े चलो उन्मत्त सिपाही !

(४)

आज जवानी मचल रही है,
चलो आज संसार पलट दें !
आज विभव का दर्प चूर्णकर,
ताज फेंक दें, तख्त उलट दें !
जन-समुद्र में ज्वार उठा है,
अरे ! 'अगस्त्य' ! कहां सोता है ?
चिर-पीडित का सिंहनाद,
प्रलयंकर आज मूक होता है ?
चरण-चरण में महानाश है,
हम हैं ज्वाला-पथ के राही !
आज रक्त से धो देनी है,
दीन देश के मुख की स्याही !
बढ़े चलो उन्मत्त सिपाही !